

रघुवीर सहाय

एक समय था

८११.८
रघु/र

एक समय था

रघुवीर सहाय

संकलन और संपादन
सुरेश शर्मा



राजचंसल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य : रु. 120.00

© विमलेश्वरी सहाय

प्रथम संस्करण : 1995

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.

1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110 002

लेजर टाइपसेटर : कंप्यूटेक सिस्टम,

मानसरोवर पार्क, दिल्ली-110 032

मुद्रक : मेहरा ऑफसेट प्रेस

दरियागंज, नई दिल्ली-110 002

आवरण : सुरेन्द्र राजन

EK SAMAYA THA

Poems by Raghuvir Sahay

Collected and edited by Dr. Suresh Sharma

ISBN : 81-7178-412-7

ये अंतिम कविताएँ

रघुवीर सहाय का यह अंतिम कविता-संग्रह है। इसमें अधिकांश कविताएँ उनके जीवन के आखिरी चार-पाँच वर्षों की हैं। इनमें ज्यादातर अप्रकाशित हैं और असंकलित तो हैं ही। कुछ कविताएँ सातवें दशक की भी हैं जो छपने से रह गई थीं। ऐसी कविताएँ अधिक नहीं हैं। इन्हें भी शामिल कर लेने के कारण सिर्फ इतना है कि इन कविताओं का मिज़ाज भी वही है जिससे सहायजी की कविता के अद्वितीय संसार की पहचान बनती है।

सहायजी के निधन के बाद उनके लेखन-कारखाने के तमाम कागज़ों, डायरियों और चिट-पुर्ज़ों पर दर्ज उनके आलेख को पढ़ने की कोशिश की गई। उन आलेखों में ज्यादातर कविताएँ थीं। यह संग्रह उन्हीं कविताओं का संकलन है। सहायजी की काव्य सर्जन-प्रक्रिया शुरू के वर्षों में सुनियोजित थी। *आत्महत्या के विरुद्ध* की लंबी कविताओं के कई प्रारूप व्यवस्थित रूप से लिखे मिलते हैं। लेकिन धीरे-धीरे उनकी काव्य रचना-प्रक्रिया की यह व्यवस्था टूटने लगती है। उन्हें जहाँ भी और जब भी काव्य-सत्य हासिल होता है वे तुरंत उसे वहीं दर्ज कर लेते हैं। बाद में इन काव्य टुकड़ों को जस-का-तस रहने देकर या बड़ा या छोटा करके वे कविताएँ संभव करते हैं। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में सहायजी ने रचने की यह प्रक्रिया अधिक अपनाई है, इसलिए ये कविताएँ किसी कापी में लिखी हुई नहीं मिलीं। ये निमंत्रणपत्रों की सादी पीठ, लिफ़ाफ़ों के रिक्त स्थान, दूतावासों के सूचना पत्रों, यहाँ तक कि सिगरेट की डिब्बियों पर भी लिखी हुई प्राप्त हुई। रघुवीर सहाय का कवि हर क्षण सक्रिय रहता था। जयप्रकाश नारायण से वे साक्षात्कार ले रहे हैं और नोटबुक में उसे लिख रहे हैं। जेपी से बातचीत के बीच नोटबुक पर अचानक एक गोल घेरा बना मिलता है जिसमें काव्य पंक्तियाँ दर्ज हैं। फिर आगे साक्षात्कार...। यह प्रक्रिया इस बात का सबूत है कि वे पत्रकारिता के बीच भी एक कवि की हैसियत से निरंतर सक्रिय और सचेत रहते थे। संभवतः यही कारण है कि उन्होंने अपना अधिकांश काव्य-सत्य पत्रकारिता के इलाके में पाया है, क्योंकि वही उनका जीवन था। उनकी रचनाएँ ख़बरधर्मी भी इसीलिए हैं। इसी तरह उनकी पत्रकारिता भी काव्यधर्मी है, जिसमें मानवीय और संवेदनात्मक प्रसंगों की प्राथमिकता है।

बड़ी संख्या में जमा अपने इन चिट-पुर्जों की गहरी उपयोगिता से सहायजी वाकिफ़ थे। वे उसे व्यवस्था देने के लिए समय-समय पर चिंतित भी होते थे। निधन से चार वर्ष पूर्व 1986 में अपनी एक ललित टिप्पणी में उन्होंने लिखा था, “अगर मैं अभी इसी क्षण दुनिया से विदा हो जाऊँ तो कुछ लोग बड़े झंझट में पड़ जायेंगे। ये वे लोग होंगे जिन्हें मेरे पास जमा कागज़ों को बटोरने-छाँटने और फिर से जमा करने का बोझ ढोना पड़ेगा।

“वे उसे इस उम्मीद से ढोएँगे कि इन कागज़ों में कहीं उनके मतलब की कोई चीज़ निकल आएगी। मालूम नहीं ऐसी कोई चीज़ कहीं होगी जो किसी के मतलब की हो, या किसी में इतना धीरज होगा कि उसकी खोज करता रहे, मगर यह जानता हूँ कि ऐसा मानकर कि मैं अपना काम अपने बाद कर रहा हूँ, मैंने कई बार उन कागज़ों की उथल-पुथल की है और हाँ, काम की चीज़ मिली है। हो सकता है आप उसे काम की चीज़ न कहें, पर उस जिंदा आदमी के लिए जो यह अटल विश्वास लिये जीता है कि उसके पास रद्दी कागज़ों के अपार भंडार में अज्ञात रत्न छिपे हैं— हर पुरज़ा जिसका संबंध बाकी पुरज़ों से एक बार स्पष्ट न हो रहा हो, काम की ही चीज़ है।” (युवक धारा, 15 नवंबर, 1986)

सहायजी को इन पुर्जों में दर्ज ‘काम की चीज़ों’ में एक संबंध ढूँढ़कर उसे व्यवस्था देने का समय नहीं मिल सका। असल में विभिन्न स्थितियों के बीच संबंधों की खोज और पहचान ही उनके अंतिम वर्षों के काव्य-सर्जन की प्रक्रिया थी। उन दिनों कविता लिखते हुए अक्सर वे एक ही संदर्भ की दो अलग-अलग काव्य-टिप्पणियों को मिलाकर एक नयी कविता रचते हैं।

इन सामग्रियों में क्या है इसके बारे में स्वयं ही वे टिप्पणी में आगे कहते हैं, “जिस संबंध की बात सोचकर मैंने कुछ खोज कर डालने का उपक्रम किया है वह है क्या? अर्थात् मेरे रद्दी कागज़ों के ढेर में छिपे मेरे असंबद्ध जीवन के संग्रहित उन प्रमाणों में से जो अभी तक पहचानकर ठिकाने नहीं लगा दिए गए हैं, वे किस ठौर पहुँचकर किसी अधूरे महाकाव्य का अंग बन जाएँगे।”

लेकिन सहायजी के चिट-पुर्जों में छिपा ‘महाकाव्य’ परंपरित महाकाव्य नहीं है। महाकाव्य से उनका क्या तात्पर्य है इसे वे आगे स्पष्ट करते हैं, “महाकाव्य कहने से आपको भ्रम हो रहा हो कि रामचरितमानस जैसी कोई बात मेरे मन में है तो ऐसा नहीं। महाभारत जैसी तो हो सकती है। दरअसल महाकाव्य की मेरी कल्पना महाभारत की ही है।” नया महाभारत तो ऐसे ही पात्रों से बनेगा जैसे मेरे पास हैं। राह चलते— विलकुल ठीक-ठाक कहें तो बस में बैठे, सभा में भाषण सुनते, कभी-कभी कविता सुनते हुए ही कागज़ पर जो गोदगाद करने लगता हूँ। वह किसी न किसी पात्र का या तो एकालाप होता है या संवाद। अवसर होने पर वह कथाकार की व्याख्या भी हो सकता है। वही सब लिखा हुआ तो असंबद्ध महाभारत है।”

इन छोटे-छोटे कागज़ों पर दर्ज असंबद्ध महाभारत के ये कथित 'एकालाप' और 'संवाद' एक-दूसरे से विच्छिन्न नहीं हैं। उनमें संबंध और निरंतरता है। एक विराट परिदृश्य के अलग-अलग हिस्सों को पहचानकर उसे समग्रता में जानने की कोशिश है।

टिप्पणी के अंत में सहायजी इन सामग्रियों की एकान्विति स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, "इस तरह समय-समय पर लिखी असंबद्ध टिप्पणियाँ और अधूरे वाक्य—सब कहीं न कहीं एक धाराप्रवाह वक्तव्य के या वर्णन के अंश हैं—यह विश्वास मुझे इस संग्रह को बढ़ाते जाने और इसमें से चुनकर वे अंश पहचानते रहने की शक्ति देता है जिनसे इन टिप्पणियों का अन्तरावलम्बन स्पष्ट हो जाएगा।"

सहायजी की एक ललित टिप्पणी के ये अंश काफी हद तक इस संग्रह की कविताओं की पृष्ठभूमि और उनकी प्रक्रिया स्पष्ट कर देते हैं। अपने अंतिम दिनों की एक अप्रकाशित कविता में भी वे अपनी इन सामग्रियों को फिर से पढ़ने और उन्हें व्यवस्थित करने की इच्छा व्यक्त करते हैं :

मुझे एक लम्बी लम्बी लम्बी छुट्टी दो
मैं अपने कागज़ों को सँभालूँगा
कितनी तरह के ऊबड़ खाबड़ कागज़ हैं ये
इनके बीच से पिरो कर अपने दर्द को निकालूँगा
बाहर भय है भय है भय है
जाने क्यों आशा है कि इनको फिर से सजाने से भय मिट जाएगा—

सहायजी की अचानक मृत्यु ने उन्हें अपने इन कागज़ों को सँभालने का वक्त नहीं दिया। उन्हें आशा थी कि इन 'ऊबड़ खाबड़' कागज़ों की सामग्रियाँ उन्हें भयत्रस्त मनःस्थिति से मुक्ति देंगी और वे जीवन के लिए नई ताकत हासिल करेंगे। अपनी ही कविताओं से अपना यह उपचार वे नहीं कर पाए। एक समय था संग्रह इन्हीं 'उबड़ खाबड़' कागज़ों में दर्ज उनकी कविताओं को यथासंभव व्यवस्थित करके तैयार किया गया है।

कविताओं का संकलन और संपादन करते हुए मैंने लगातार महसूस किया कि सहायजी की ये अंतिम कविताएँ उनके संपूर्ण कविता लेखन का उपसंहार हैं। लगता है जैसे इन कविताओं में वे अतीत के अपने सारे किए हुए पर टिप्पणी कर रहे हैं और अपने समय के संघर्ष की परिणति बता रहे हैं।

यह संग्रह शुरू होता है उन कविताओं से जिनमें ख़त्म होती बीसवीं सदी के सीमांत पर भारतीय मनुष्य की ज़िंदगी का हाल वर्णित है। विदेशी कंपनियों के फैलते जाल के बीच कम होती आज़ादी की आहट है। इस व्यवस्था में जीने के लिए अनन्त समझौते करने को विवश स्वाधीन आदमी के आत्महनन की तकलीफ़ है; फिर औरतें, और बच्चे हैं अपमानित और असुरक्षित। हिंदी की दुर्दशा पर टिप्पणी के साथ ही थोड़ा हास्य-व्यंग्य भी है जो सहायजी के मिज़ाज़ का एक दिलचस्प हिस्सा था। लेकिन इन कविताओं में

ज्यादातर उन दृश्यों की भरमार है, जिससे माहौल में आतंक व्याप्त है। संग्रह के अन्त में पत्नी और मृत्यु संबंधी काफी कविताएँ हैं। ये काव्य-विषय सहायजी के दूसरे काव्य-संग्रहों में अलग से दिखाई नहीं पड़ते। पत्नी के अकेलेपन, तेज़ी से भागती उम्र तथा उसकी असहायता पर कवि ने मार्मिक टिप्पणियाँ की हैं। संग्रह के अन्त में मृत्यु संबंधी कविताएँ हैं। अपने मित्रों या परिवार में बेशक सहायजी कभी मृत्यु की चर्चा नहीं करते रहे हों लेकिन जीवन के अंतिम कुछ वर्षों में उन्हें इसका गहरा अहसास था कि वे तेज़ी से मृत्यु की तरफ़ बढ़ रहे हैं। इसलिए घूम-फिरकर वे लगातार मृत्यु पर लिखते हैं। लेकिन आसन्न मृत्यु से वे चिंतित नहीं हैं। वे उसे नितांत तटस्थता से देखते हैं। उनकी दृष्टि है कि जितना जी लिया गया है उसके बाद अगर मृत्यु आ भी रही है तो उसे दुःख का कारण नहीं बनने देना चाहिए। मृत्यु को लेकर वे आंदोलित नहीं हैं बल्कि उसे सहज परिणति मानकर उसके प्रति स्वीकृति का भाव है।”

संग्रह की अधिकांश कविताओं में आपको लगेगा कि जीवन के सीमांत पर खड़े रघुवीर सहाय इन काव्य-पंक्तियों में अपनी आत्मस्वीकृतियाँ दर्ज कर रहे हैं। उनकी ये आत्मस्वीकृतियाँ आज की जीवन-वास्तविकताओं की हमारी पहचान को ताज़ा बनाती हैं। अपने प्रभाव में ये कविताएँ हमें उन संघर्षों के लिए नई शक्ति देती हैं, जिनसे रघुवीर सहाय आजीवन जुड़े रहे। उनका संघर्ष मतदाता के लिए वास्तविक आज़ादी, वास्तविक लोकतंत्र और वास्तविक समता हासिल करने से जुड़ा था। उन्होंने इन कविताओं की काव्य-स्थितियाँ इसी संघर्ष यात्रा के दौरान हासिल की हैं।”

संकलन तैयार करते हुए सहायजी की पत्नी श्रीमती विमेलश्वरी सहाय अर्थात् बट्टूजी का निरंतर सहयोग मिला। इस सहयोग के कारण ही संपदान संभव हो सका। श्री अशोक वाजपेयी का स्नेहपूर्ण आग्रह था कि ‘रघुवीर सहाय रचनावली’ में शामिल करने से पूर्व इन अंतिम कविताओं का तत्काल संकलन छपे। श्रीमती शीला संधू ने सहायजी की अंतिम कविताओं के संग्रह को प्रकाशित करना एक कर्तव्य की तरह लिया। श्रीमती मंजरी जोशी और श्री हेमंत जोशी ने सहायजी द्वारा अस्पष्ट ढंग से लिखी अधिकांश कविताओं के शब्दों और वाक्यों को पढ़ने में काफी मदद की। डा. राधिका शर्मा ने कई स्तरों पर सहायता की। सब सहयोगियों के लिए मैं विनम्र आभार व्यक्त करता हूँ।

नई दिल्ली
मार्च, 1995

सुरेश शर्मा

बसंत सहाय के लिए

पूर्व कथन

सहायजी के अंतिम दिनों की असंकलित और ज़्यादातर अप्रकाशित कविताओं के इस संकलन में उनके जीवन के आखिरी वर्षों की मानसिकता का अंकन है। उनके पाठकों के लिए इस संग्रह का महत्त्व इसलिए भी है क्योंकि *एक समय था* की कविताओं से उनके व्यक्तित्व की पहचान को संपूर्णता मिलती है। संग्रह की कविताओं में उनके काव्य व्यक्तित्व के नए रूप भी दिखाई पड़ते हैं। उनके पाठकों तक उनका यह नया रूप पहुँच रहा है, इसकी मुझे विशेष प्रसन्नता है।

विमलेश्वरी सहाय

क्रम

आत्महत्या के विरुद्ध '85	15	मेरा काम	41
बड़े देशों की राजनीति	17	नौकरी	42
गुलामी	18	सहयोग	42
राजा की रक्षा	19	कविता	43
लोकतंत्र का संकट	20	कविता बन जाती है	43
निर्भय हत्यारे	21	मेरा कृतित्व	44
ग़रीबी	22	हल्का होता हूँ	44
तटस्थ	23	पात्र से रिश्ता	45
वर्गीकरण	24	देश के बारे में	45
कहीं जाना मना है	25	भारतीय	46
समझौता	26	खाने से पहले	46
हम जानते हैं	27	कल और आज	47
प्राकृतिक मृत्यु	28	ठंड से मृत्यु	47
देश में रहना	28	ख़बरें	48
युग ऐसा है	29	योजना	48
रोज़ मुझे मिलता है	30	कम नहीं	49
लोग	30	दृश्य	49
चिट्ठियाँ	31	हमारी मुठभेड़	50
मौका	33	इतिहास	51
पराजय के बाद	35	अशोक वाजपेयी की याद	52
नई जाति	36	इच्छा	53
उन्नति	37	आशा	54
चयन	38	अकेलापन	54
एक समय था	39	अगर कागज़ होता	55
पहले बदलो	40	एकांत	55

घर में भरे कागज़	56	भाषा का युद्ध	82
उच्चारण	57	भाषा का भविष्य	83
हिंसा में मनोरंजन	57	हिंदी	83
जेल में कविता	58	अंग्रेज़ी	84
बड़ा अफ़सर	59	डर	84
उसकी ऊब	59	मंत्री के घर में	85
बिखरना	60	प्रश्न	85
पुरानी तस्वीर	61	ईर्ष्या	86
कौन था ?	62	हिंदुस्तानी अमीर	87
ऐसा क्या था	63	तरक्की के दशक	88
किताब पढ़कर रोना	64	अकेला	89
रोना	65	आदेश	89
नहीं छापते	66	उम्र	90
क्यों मरे	66	वर्ग परिवर्तन	90
कल	67	जाने की जगहें	91
निमंत्रण	67	आत्मरक्षा	91
साथ के लोग	68	हँसी जहाँ ख़त्म होती है	92
चिड़िये के सामने	69	समान अवसर	92
अकेला व्यक्ति	70	महापुरुष	93
मुझसे दूर वह	71	संस्थान	93
ढब	72	उद्योग	94
ख़तरा	72	दृश्य-1	94
दुख	73	दृश्य-2	95
आखिरकार	73	दृश्य-3	95
अभी कहूँगा नहीं	74	दृश्य-4	95
मान्यता	75	अंतर	96
अनाज के इस्तेमाल	76	निंदा	96
लेखक होना	77	बस में अभिमन्यु	97
सेंसर .	78	नई पीढ़ी	100
सुबह	79	मेरे अनुभव	101
दर्शक	79	महाभारत	102
दीक्षांत समारोह	80	संतान	103
भाषा की मृत्यु	81	चिंता	103

बेटे से	104	यह क्या है ?	127
मेरा लड़का	104	वृद्ध	128
दृश्य	105	हिसाब	128
गृहपति	105	मुश्किल समय	129
मुस्कान	106	उम्र	130
औरत की पीठ	106	जीवन का सिलसिला	131
स्त्री का भय	107	मिलना	132
चैती	110	जीवन	133
रहस्य	110	बुढ़ापे की ओर	134
फर्क	111	उम्र	135
पढ़ते पढ़ते	111	बुढ़ापा	135
आजकल बसों में	112	आराम से मरता	136
भ्रम निवारण	112	दूर के शहर से	137
लड़कियाँ	113	मृत्यु	138
परिवार	114	शोक सभा	139
घर के लोग	114	सोमदत्त	140
रजिया आपा	115	अधूरे काम	141
माँ	116	अमरता	142
स्पर्श	116	अभी जीना है	143
रात को जागकर	117	कापी	143
मेरी स्त्री	118	रहस्य	144
उसका मन	119	हम दोनों	144
संगिनी	120	अभी लिखी नहीं गई	145
स्वीकार	121	चुपचाप	146
उपन्यास लिखना	121	मैं खुद जाना चाहूँगा	146
परिवर्तन	122	दृश्य	147
उसका रहना	122	बटू को देखकर	147
मेरा साथ	123	मेरी चीख	147
नहीं रोक्कूँगा	124	जीवन के अंतिम दिन	148
काल से परे	125	मैं मर चुका हूँ	151
एक दिन आता है	126	चेहरे की सिकुड़नें	152

आत्महत्या के विरुद्ध '85

जब से मैंने यह कविता लिखी है
कट रहे जंगल के छोर पर राजमार्ग के समीप
सब दिन मरे पड़े मिलते हैं नौजवान
लाश का हुलिया सुन कोई जानता नहीं कौन था
मान लिया जाता है कैसे मरा होगा
मरने का कारण अब थोड़े ही शेष है
हुलिया भी संक्षिप्त होता जा रहा है
जितने कम कपड़े उतना छोटा हुलिया
चेहरे पर जाति की छाप मिट रही है
गाँव के सयाने तो मौत का कारण हताशा बताते हैं
समवयस्क समवेत स्वर में अनेक नाम लेते हैं
पर उसका नाम है हत्या

यह शून्यकाल है युग के बदलने का
बीसवीं शताब्दी जाने से पहले धोखा दे रही है
कि सारे संसार में आ रहा है नवयुग
पीने, उड़ाने, पहनने, खाने का समय
खाने पीने वाले खुद उसे धोखा समझते हैं
सत्य मानते हैं सिर्फ भूखे और प्यासे लोग
जिनको पता होनी चाहिए असलियत

यह युग है जिसका अंत हमें दिखता है
पर अगले युग का आरंभ नहीं जानते

मनहूस शून्य के अथाह में पाँव नहीं टिकते हैं
हम डूबते नहीं उतराते रहते हैं
बार-बार यह कोशिश है कि हर एक संवाद
अर्थहीन हो जाए
लोगों के संबंध मध्यस्थों द्वारा बना करें
आज इन टूटते रिश्तों को सार्वजनिक मान्यता देते हैं अध्येता
करते हैं प्रबंध की एक शैली का उद्घाटन,
जनता के साधनों से नए लाभ की

यह नहीं हो सकता, यह नहीं होगा
शून्य में घोषणा करता है विचारक
पढ़े लिखे लोगों के बीच सिद्ध होता है
कि संवाद मर गया
कर्महीन लोकतंत्र की मदद करता है विध्वंसक लोकतंत्र
दोनों मिलकर विचारधारा चलाते हैं
कि कोई विचार नहीं हत्या ही सत्य है
हम भी भयभीत असहाय भी भयभीत है
यों कह कर भीड़ में समर्थ छिप जाते हैं

बड़े देशों की राजनीति

देश पर मैं गर्व करने को कहता हूँ
उनसे जो अमीर हैं बड़े स्कूलों में पढ़े हैं
पर उन्हें गर्व नहीं है
गर्व है भूखे प्यासे अधपढ़े लोगों में
राष्ट्रीय गौरव रह गया है अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में
मोहरा बन कर
पड़ोसी को हराने में, यह गर्व मिटता है
यदि पड़ोसी और हमारी जनता की दोस्ती बढ़ती है
बड़े देशों की राजनीति करने के लिए अपनी जनता को
तनाव में रखना पड़ता है।

गुलामी

मनुष्य के कल्याण के लिए
पहले उसे इतना भूखा रखो कि वह और कुछ
सोच न पाए
फिर उसे कहो कि तुम्हारी पहली ज़रूरत रोटी है
जिसके लिए वह गुलाम होना भी मंजूर करेगा
फिर तो उसे यह बताना रह जाएगा कि
अपनों की गुलामी विदेशियों की गुलामी से बेहतर है
और विदेशियों की गुलामी वे अपने करते हों
जिनकी गुलामी तुम करते हो तो वह भी क्या बुरी है
तुम्हें तो रोटी मिल रही है एक जून।

जनवरी 1972

राजा की रक्षा

किसी समय राजा थे अनेक
और अनेक कृपाकांक्षी
राजा किया करते थे हत्या राजाओं की
और एक-दूसरे के कृपाकांक्षियों की भी
लोकतंत्र में भी अब हत्याएँ होती हैं
सर्वप्रथम उनकी जो कृपाकांक्षी नहीं

राजा के हत्या षड्यंत्र की गौरवमय गाथाएँ
लिखते थे कवि और सुनते थे प्रजागण
कीर्ति ग्रंथ बनते थे
साहित्य बढ़ता था

अब कोई मरता है तो लोकतंत्र में वह
दरअस्ल हत्या होती है
राजा अब कहीं अधिक रक्षित हैं
वे या तो मरे हैं बूढ़े हो
या बूढ़े होकर भी जिए जाया करते हैं

मरते हैं युवा युद्ध क्षेत्र में जो राजा ने
बहुत दूर दूर तक फैला रखा है
अपने से बहुत दूर जनता के बहुत पास
एक घनी बस्ती में चुनकर गरीब लोग
मार दिए जाते हैं राजा को बनाए रखने के लिए।

लोकतंत्र का संकट

पुरुष जो सोच नहीं पा रहे
किंतु अपने पदों पर आसीन हैं और चुप हैं
तनाशाह क्या तुम्हें इनकी भी ज़रूरत होगी
जैसे तुम्हें उनकी है जो कुछ न कुछ ऊटपटाँग विरोध करते रहते हैं

सब व्यवस्थाएँ अपने को और अधिक संकट के लिए
तैयार करती रहती हैं
और लोगों को बताती रहती हैं
कि यह व्यवस्था बिगड़ रही है
तब जो लोग सचमुच जानते हैं कि यह व्यवस्था बिगड़ रही है
वे उन लोगों के शोर में छिप जाते हैं
जो इस व्यवस्था को और अधिक बिगाड़ते रहना चाहते हैं
क्योंकि
उसी में उनका हित है

लोकतंत्र का विकास राज्यहीन समाज की ओर होता है
इसलिए लोकतंत्र को लोकतंत्र में शासक बिगाड़कर
राजतंत्र बनाते हैं।

निर्भय हत्यारे

उस दिन मोहल्ले में एक हत्या हो गई

जैसा कि बीसवीं शती की अंतिम घड़ी में ही हो सकता है—
हत्या का सबूत उसी व्यक्ति ने प्रकट किया
जिसकी हत्या हुई थी

और अखबारों ने यह छापा
हत्यारे मारकर मनुष्य को लाश उसकी रख देते हैं
सबूत के लिए, अपराध साबित नहीं होता
और हर व्यक्ति जो जिंदा बचा रहता है
हत्या के आतंक में पड़ा जीता है

तब सारे स्वार्थ जुट जाते हैं
सच कहनेवालों को
अपने समाज से बाहर कर देने के लिए

हत्या के तंत्र का विकास यह है कि सभी तार मिल जाते हैं
एक सी संवेदना के

आजादी दो गुटों में से किसी एक की गुलामी से
मिलती है।

1987

ग़रीबी

हम ग़रीबी हटाने चले
और उस समाज में जहाँ आज भी दरिद्र होना दीनता नहीं
भारतीयता की पहचान है, दासता विरोध है दमन का प्रतिकार है
हम ग़रीबी हटाने चले
हम यानी ग़रीबों से नफ़रत हिकारत परहेज़ करनेवाले
हम ग़रीबी हटाते हैं तो ग़रीब का आत्मसम्मान लिया करते हैं
इसलिए मैं तो इस तरह ग़रीबी हटाने की नीति के विरुद्ध हूँ
क्योंकि वही तो कभी-कभी अपने सम्मान की अकेली
रचना रह जाती है।

17 मई, 1989

तटस्थ

उसने कहा देश में तुम्हारे हम क्या करें
हम जानते नहीं
कोई किसी बात का ज़िम्मा नहीं लेता
न कोई किसी को ज़िम्मेदार ठहराता है
कुछ साल पहले हर व्यक्ति जासूस था
कोई बोलता न था
चाहे उसे सिर्फ यह कहना हो कि मुझे पता नहीं।

वर्गीकरण

पत्र सूचना विभाग मौत की कई ख़बरें
एक साथ जारी कर देता है
संपादक उन्हें छाँट कर विषय के हिसाब से रखते हैं

महानगर में बूढ़े बूढ़ियों की घर में हत्या
कोई डकैती नहीं
फिर सड़क दुर्घटना
मोटर भिड़न्त कम
बस तले कुचला जाना अधिक
और आत्महत्याएँ सब एक सिरे से एक साथ ।

कहीं जाना मना है

इस दौर में कहीं जाना मना है
घर के एकांत में कुछ पते याद करो
कुछ चिट्ठियाँ लिखो

सपनों में दिखे मकानों में रहते कुछ अजनबियों को
अपने संवाद बोलते सुनो
ये किसी ने नहीं लिख कर दिए हैं
ये अपने तर्क से
अस्पताल, रोज़गार दफ़्तर, बाज़ार से
कहाँ कहाँ से आकर जुड़े हुए शब्दों से बन गए
जैसे हर चरित्र के अंदर पहले से बंद थे :
अलिखित प्रश्नों के अलिखित उत्तर सुनो
जो गुपचुप सेंसर में लोग दिया करते हैं
जनता के मन की वह गूँज सुनो

इस दौर में एक शांति है
यह कैसा वक़्त है
कि जितना गुज़र जाता है
उतना ही रुक जाता है

हम लगातार रात का इंतज़ार करते हैं
कल जागने का इरादा कर सोते हैं
सपनों में यादों के घर अपनी जगह बदल लेते हैं
सब रहनेवालों को एक करते हुए।

समझौता

एक भयानक चुप्पी छाई है समाज पर
शोर बहुत है पर सचाई से कतरा कर गुज़र रहा है

एक भयानक एका बाँधे है समाज को
कुछ न बदलने के समझौते का है एका

एक भयानक बेफ़िक्री है
पाठक अत्याचारों के किस्से पढ़ते हैं अख़बारों में
मगर आक्रमण के शिकार को पत्र नहीं लिखते हैं
संपादक के द्वारा

सभी संगठित दल विपक्ष के
अविश्वास प्रस्ताव के लिए जुट लेते हैं
एक भयानक समझौता है राजनीति में
हर नेता को एक नया चेहरा देना है।

हम जानते हैं

हम जानते हैं कि पतन अनेक रूप धर कर
हमें क्षय कर रहा है
और यह भी जानते हैं कि बदलना तो सबकुछ एकसाथ होगा
पर समाज को एकसाथ बदलने के लिए
एक व्यापक बहुआयामी आदर्श और उतना ही स्पष्ट कार्यक्रम चाहिए।

वह नहीं है इसलिए जनता जाग्रत नहीं हो सकती
तब जनता को सिर्फ उत्तेजित करने के प्रयत्न
हम करते हैं—
व्यापक पतन को विरोध के खंडों में बाँट कर
और खंड
विरोध को अकेला और भ्रष्ट करता जाता है।

17 अप्रैल, 1988

प्राकृतिक मृत्यु

कैसा इतिहास है कि ठीक जिस समय एक आदमी
अन्याय के तंत्र को चुनौती देता हुआ
उलझे हुए लोगों की भीड़ से सामने आता है
गोली चलती नहीं
प्राकृतिक मौत से वह मारा जाता है।

1989

देश में रहना

अगर हम आँखें खुली रखते हैं, याद ताज़ा और दिल जवान
तो हमें ये ख़बरें किसी और देश की ख़बरें जान पड़ती हैं
यह देश हमारा नहीं है पर हम इसमें रहने को मजबूर हैं
इसमें रहना इसी के खिलाफ़ एक नया देश बनाना है।

12 दिसंबर, 1987

युग ऐसा है

जो कहूँगा सच कहूँगा और सच के सिवाय कुछ नहीं कहूँगा
यह युग ही ऐसा है कि मुझे सच से कोई डर नहीं
सच बोलना पाप करने के बाद की नीति है
जमाना बदल गया उपदेश बेकार हो गए
अब वही काम जो आत्मा से होते थे
सहज चतुराई से होते हैं
पुलिस सिखलाती है जुर्म कैसे साबित न हो
मुजरिम एक वक्तव्य देता है मुझ पर दबाव था।

रोज़ मुझे मिलता है

रोज़ मुझे मिलता है एकाकी आदमी
खींसे निपोड़े हुए भक्तों की भीड़ में
अपने अतीत को तोड़ते बनाते हुए
छोड़ते छोड़ते वर्तमान बार बार
आँखें खुली हैं मुँह बंद है
कोई नहीं मित्र है केवल सब सहमत हैं
कोई विवाद नहीं केवल तिरस्कार ।

1989

लोग

सब लोग मस्त हैं
जानते नहीं हैं क्यों ?
सब मानते हैं
कि जो मारे जाएँगे वे नहीं होंगे वे
हर चीज़ खाने पीने की रंगीन
एक अजब फुरसत है जिसमें कुछ काम नहीं ।

1989

फिर ऊपर गोपन लिख डाक में तुम दे आना
इसमें रहस्य क्या !—कुछ तो है

कैंसर से, दमे से, हड्डी के क्षय से, वृद्धावस्था से नहीं
जो मर गए उन्हें मैं पत्र में क्या लिखूँ यह मेरी चिन्ती
अनेक संस्मरणों का लेख है
और बिना मुझे मिले उनका दिया उत्तर ।

1 मई, 1989

मौका

नेता ने कहा कि सब भ्रष्ट हो गया है सो ठीक कहा
हिम्मत की
पर हिम्मत नहीं थी लोग यह पहले ही जान चुके थे
अब यह केवल स्वीकार था कि मैं पिछड़ गया हूँ
समाज को समझने में
नेता कुछ नहीं बता रहा
जो जनता अभी नहीं देख रही
और यह तो बिल्कुल नहीं कह रहा कि यह जो पतन है
वह किस अर्थनीति का नतीजा है
वह केवल उसी अर्थनीति में विरोध की बात करता है
जिसका मतलब है अभी जो शासक है वैसा ही बनेगा
सिर्फ भ्रष्ट नहीं होगा, ऐसा कहता है
इस बार नेता का पतन राजनीति के द्वारा रोका नहीं जा सकता
जब तक कि राजनीति बदली नहीं जाती
एक बड़ी विपदा के छोटे-छोटे घेरों में कौन अच्छा कौन बुरा
उसकी किसी पहचान का आखिर क्या मतलब ?
तब नेता का यह कथन कि देखो यह वर्तमान
लोगों को उकसा रहा है कि वे अतीत भूल जाएँ
और भविष्य के लिए आशंका ग्रस्त हों
यदि शासक अपने कामों से पराजय को प्राप्त हो
तो वह जनता की जीत नहीं है : वह एक और पतन के लिए
एक और भ्रष्टाचार में लूट के लिए

किसी और नेता को मौका देने की बात है
लोग जानते हैं सब मगर जान लेना सब
राजनीति छोड़ ही देना है पतन के सहारे
क्योंकि जनता ने सब जाना, केवल विकल्प नहीं जाना
कोई विकल्प नहीं ही सकता उस समाज में जहाँ
लोग सब जानते हैं केवल उसी का अस्वीकार होता है
कोई तो बताए वह जो अभी लोगों को पता नहीं
लोगों को याद कोई यह दिलाए कि जो बीता
वह उनका किया था क्योंकि वे कुछ नहीं करते थे।

पराजय के बाद

तुमको लोग भूले जा रहे हैं
क्योंकि तुम जाने जाते रहे हो अपने अत्याचारों के कारण
और आज तुम हाथ खींचे हुए हो
कि तुम्हारे अत्याचारों को लोग भूल जाएँ
पर लोग तुम्हीं को भूले जा रहे हैं
करो कुछ जिससे कि वह शक्ति दुष्टता की
लोग फिर देखें और लोग भयंकर मुग्ध हों
एक राष्ट्र के पतन का लक्षण है कि
वे जो जीवन भर परोपजीवी रहे

सत्ता के तंत्र में

आज उससे बाहर होकर यह भ्रम फैला सकते हैं कि
वे किसी दिन यह समाज बदल देंगे
और अभी सिर्फ मौका देखते हुए बैठे हैं

9 जून, 1981

नई जाति

एक पूरी जाति अविश्वासियों की पैदा हुई
न्याय के नियमों से जो नहीं डरते
हँसते हैं वे तो डराते हैं।
कहते हैं वे
कि कुछ विश्वसनीय नहीं रहा
जीवन में सत्ता के चरणों में किंतु वे आस्थावान
चढ़े जा रहे हैं
जिन्हें सचमुच जीवन में आस्था है
उनको धकेलते।

20 मई, 1972

उन्नति

राज्य राज्य सब जगह
कहीं जगह नहीं खाली
इसी तरह बजती है
एक हाथ से ताली

आस पास में पुलिस
सेना पड़ोस में
ऐश में धँसे जन
उतराए अफ़सोस में

मेलों में धन लगे
विदेश से मिले साधन
हम उन्नति करते हैं
बार-बार निर्धन बन

राष्ट्र सिकुड़ता है
विपदा से जुड़ता है

अप्रैल, 1980

चयन

हिंदुस्तानी चेहरे छाँटे जा रहे हैं
विदेशी कंपनियाँ ढूँढ़ रही हैं सही हिंदुस्तानी
चेहरा
बड़े-बड़े घरों की लड़कियाँ लोक पोशाक पहनकर
नथ चढ़ाकर हाथ की बुनी साड़ी
पहने खड़ी हैं कतार में।

1972

एक समय था

एक समय था मैं बताता था कितना
नष्ट हो गया है अब मेरा पूरा समाज
तब मुझे ज्ञात था कि लोग अभी व्यग्र हैं
बनाने को फिर अपना परसों कल और आज
आज पतन की दिशा बताने पर शक्तिवान
करते हैं कोलाहल तोड़ दो तोड़ दो
तोड़ दो झोपड़ी जो खड़ी है अधबनी
फिजूल था बनाना जिद समता की छोड़ दो
एक दूसरा समाज बलवान लोगों का
आज बनाना ही पुनर्निर्माण है
जिनका अधिकार छीन जिन्हें किया पराधीन
उनको जी लेने का मिलता प्रतिदान है।

पहले बदलो

उसने पहले मेरा हाल पूछा
फिर एकाएक विषय बदलकर कहा आजकल का
समाज देखते हुए मैं चाहता हूँ कि तुम बदलो

फिर कहा कि अभी तक तुम अयोग्य
साबित हुए हो

इसलिए बदलो,
फिर कहा पहले तुम अपने को बदलकर दिखाओ
तब मैं तुमसे बात करूँगा।

1980

मेरा काम

बहुत आत्ममंथन के बाद मैं समझता हूँ कि मेरी सफलता का उत्स है
मेरा किसी दुष्कर कर्तव्य में लगना
जहाँ काम को संपूर्ण करने का अर्थ है
अपने को होम कर डालना
इस समय मैं जो कर रहा हूँ बेहद सरल है
यह जानते हुए भी कि रचना और कल्पना और सूझ का
यहाँ पूरा उपयोग हो सकता है
मैं यहाँ अपने को नीरस उद्योग में लगा हुआ पाता हूँ
असलियत यह है कि
काम जो दिया गया है मुझे रचना का नहीं है
और संयुक्त श्रम जिसमें हजारों घंटे लग जाने पर कुछ निकल सकता है
शिल्प पर नहीं प्रबंध पर आश्रित है
कुछ नया बनाने का यहाँ प्रयोजन नहीं
बने को एक में एक जोड़ते जाना उद्देश्य है।

नौकरी

रात को ऐसा लगता है कि कल से मैं
छुट्टी पर चला जाऊँगा
हर रात को ऐसा भ्रम
कि कल काम पर नहीं जाना है।

जून, 1972

सहयोग

जिस दिन से मैं अपने पद से नीचे गिरा
सब घटिया लोग मुझे सहयोग देने लगे।

23 जून, 1988

कविता

किसी ने बुढ़ापे में बोझ नहीं डाला
लड़कियाँ ब्याह कर चली गई लड़के गुज़र गए
हर बार घूम फिर कर
अपने एकाकीपन की व्याख्या करना
क्या कविता है ?

5 दिसंबर, 1988

कविता बन जाती है

हम लोग रोज़ खाते और जागते और सोते हैं
कोई कविता नहीं मिलती है
जैसे ही हमारा रिश्ता किसी से भी साफ़ होने लगता है
कविता बन जाती है।

मेरा कृतित्व

मैं अपनी सारी कविताओं को जोड़ कर रख दूँ
बीच-बीच में रख दूँ पत्र, गद्य में फुटकर टीपें,
कहानियाँ बीस-तीस
सब को मिला कर एक बन जाएगा समाज ?—
नहीं नहीं एक घुमड़ता हुआ दर्द एक खालीपन बोझ भरा ।

हल्का होता हूँ

किसी बड़ी कविता की रचना में
मैं जितना फालतू बोझ कम करता हूँ
उतना ही मैं हल्का होता हूँ
जीवन से बड़ी नहीं हो सकती है रचना
अच्छा लिखने का अभिमान एक बोझ है
भाषा पर लाद कर उसे तुम चल न दो ।

पात्र से रिश्ता

तुम चाहते हो कि सारी समस्याएँ मेरे लिखे में हल कर दी जाएँ
मैं पात्र बनाऊँ और उसमें जीवन भर दूँ
फिर उस जीवन को
एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए बदल दूँ
कुछ विकसित न हो अपने आप पात्र में—
एक नया संसार बने नहीं।

देश के बारे में

फिर मैंने तय किया कि लिखता हूँ कविताएँ देश के बारे में
तरह तरह के समाज, हाँड़ियाँ, मुखौटे, बल्लम, छुरे
विविध तिलक छापे, मुद्राएँ, घटकलश, खड्ग, घंटी,
रुंड-मुंड, कालिमा,
वक्ष आदिवासी स्त्री देह के।

भारतीय

हम भारतीय हैं
धन्यवाद, धन्यवाद, क्षमा कीजिएगा, नहीं कहते हैं
हम सिर्फ देखते हैं अपनी आँखों से
और ले लेते हैं पानी भरा गिलास
फिर से उधर एक बार देख कर

9 जनवरी, 1989

खाने से पहले

सामने थाली को देख कर
पहले मैं ईश्वर को धन्यवाद करता था
आज मुझे अपमान याद आता है।

1988

कल और आज

अपने ही देश के सिपाहियों से
यहाँ की भीड़ का क़त्लेआम
देख कर विश्वास नहीं होता अभी तक
पढ़ा था कि दूसरे देशों में ऐसा करते हैं

कल कहा था कि नहीं करेंगे
आज कह रहे हैं—आप क्या कर लेंगे।

1972

ठंड से मृत्यु

फिर जाड़ा आया, फिर गर्मी आई
फिर आदमियों के पाले से लू से मरने की ख़बर आई :
न जाड़ा ज़्यादा था न लू ज़्यादा
तब कैसे मरे आदमी
वे खड़े रहते हैं तब नहीं दिखते,
मर जाते हैं तब लोग जाड़े और लू की मौत बताते हैं।

फरवरी, 1972

ख़बरें

700 मर गए अख़बार कहता है
खंडहर और लाश दूरदर्शन दिखाता है
बहुत सी ख़बरें मेरे अन्दर से आती हैं
सब को चीर कर हहराती।

1988

योजना

52 करोड़ की जिंदगी 8 करोड़ के हाथों में
योजना भी है अंग्रेज़ी भी फिर एकता क्यों नहीं है
रोज कुआँ खोद कर पानी पीनेवाले से कहा कि त्याग करो
100 में 5 खाते खाते मरते हैं और 95 कम खाकर।

जनवरी 1972

कम नहीं

एक चीत्कार की आवाज़
100 चीत्कारों की आवाज़ से कम नहीं
आग की लपटें अगर सौ परिवार को जलाती हैं
तो एक बच्चे के झुलसने का दर्द कम नहीं।

7 सितंबर, 1989

दृश्य

कैसा आमोद भारत में छाया
जिसको देखो वह खिसिया रहा है।

अप्रैल, 1989

हमारी मुठभेड़

कितने अकेले तुम रह सकते हो
अपने जैसे कितनों को खोज सकते हो तुम
अपने जैसे कितनों को बना सकते हो
हम एक ग़रीब देश के रहनेवाले हैं इसलिए
हमारी मुठभेड़ हर वक़्त रहती है ताक़त से
देश के ग़रीब होने का मतलब है
अकड़ और अश्लीलता का हम पर हर वक़्त हमला ।

इतिहास

इतिहास का हम करते क्या हैं
जब कुछ करते हैं तभी
इतिहास बनता है नहीं तो हम उसके उच्छिष्ट होकर
रहने को बाध्य हैं

टूटते हुए समाज का रोना जो रोते हैं
उनके कल और परसों के आँसुओं का
प्रमाण मेरे पास लाओ
मुझे शक है ये टूटते समाज में
हिस्सा लेने आए हैं, उसे टूटने से रोकने नहीं

इतिहास का एक क्षण होता है
जब सारी शक्तियाँ
मिल जाती हैं उसे अपने पक्ष में पलट लेने के लिए
और जिनको उन्होंने निकाल बाहर कर दिया है
धीरे धीरे

उनसे यह कहती है
कि तुम अब हमारे अधीन होकर रहो
सांप्रदायिकता को मान लो
नहीं मानते हो तो
सब शक्तियों के आक्रमण सहने को तैयार रहो।

अशोक वाजपेयी की याद*

सबकुछ नष्ट नहीं होगा
कुछ तो बच ही जाएगा
सबकुछ यहीं पास ही था
तुम्हारे पास अगर समय कुछ होता
समय को पोटली में लपेट कर
मनचाहे मोड़ पर बैठा रह सकता था
चुस्कियाँ लेते और गप्प लगाते हुए
अगर तुम मिल जाते
अगर बच सका तो वही बचेगा
हम सब में थोड़ा सा आदमी

28 दिसंबर, 1986

-
- * इस कविता में रघुवीर सहाय की लिखी हुई अपनी कोई पंक्ति नहीं है। ये सारी पंक्तियाँ अशोक वाजपेयी को याद करते हुए उनकी चार अलग-अलग कविताओं से उद्धृत की गई हैं। शुरू की दो पंक्तियाँ कुछ हो कविता से हैं, उसके बाद की दो पंक्तियाँ अगर समय होता कविता से। फिर चार पंक्तियाँ अगर तुम कविता से हैं तथा अंतिम दो पंक्तियाँ थोड़ा-सा शीर्षक कविता से ली गई हैं। इस तरह अशोक वाजपेयी की अलग-अलग कविताओं की चुनी हुई पंक्तियों से सहायजी ने एक नयी कविता बना दी है।—संपादक

इच्छा

मैं सिर्फ किसी दूसरे शहर में
चला जाना चाहता हूँ
रोज़ी की खोज में नहीं
सिर्फ चौराहे पर कहीं
बैठकर यों ही सबको
देखने के लिए
कोई खास चीज़ खोजने नहीं
याद आती है कुछ जगहें जहाँ मैं
जा सकता हूँ
और उनमें से कुछ तो इसी शहर में हैं।



आशा

मुझे एक लंबी छुट्टी दो
मैं अपने कागज़ों को सँभालूँगा
कितनी तरह के ऊबड़ खाबड़ कागज़ हैं ये
इनके बीच से पिरोकर अपने दर्द को
निकालूँगा
बाहर भय है भय है भय है
जाने क्यों आशा है कि इनको फिर से सजाने से
भय मिट जाएगा
सिर्फ कुछ अध-लिखे लेख सुलझाने से।

अकेलापन

क्या मैं पहले अपने सब रद्दी कागज़ समेट लूँ
तभी यह तीखा अकेलापन
इतने बड़े घर में देखने के लिए
कागज़ कलम लूँ।

अगर कागज़ होता

अनगिनत बार ऐसा भी हुआ है कि कुछ नहीं टाँक सका
जबकि जेब में कागज़ रखा था
सीधा बढ़ा उस क्षण को लिये हुए
औरों की तरह जो कि रोज़ यही करते हैं।

लेकिन आज कागज़ नहीं है

आज अगर लिखने लायक जुमला पकड़ में आया
तो उसको लिखकर छुट्टी नहीं पा सकूँगा
जबकि पा सकता था अगर कागज़ होता।

एकांत

मैं एक खास तरह का एकांत चाहता हूँ
वेदना से उबरने के लिए शक्ति पाने को
एकांत चाहिए
एकांत जिसमें यह दुनिया साथ साथ हो
शोर के साथ और भीड़ के साथ।

घर में भरे कागज़

एक लंबा सफ़र
हम करते गये
रेलगाड़ी में बैठ कर
अपने को देखते
इसी बीच कागज़ पर कुछ अस्फुट शब्द भी गोदते गए
बाद में देखा, कुछ पंक्तियाँ सुधारीं
और बाकी को पढ़ नहीं पाया।
उन्हें एक गुंजलक बनाते हुए मोड़ कर रख लिया
यही है मेरे घर में भरे कागज़ों का रहस्य।

उच्चारण

परचियों की एक गड्डी में
एक जगह शब्द कुछ टँके मिले
यह एक और कविता मिली, अधबनी
तब अक्षरों को याद करके फिर से गढ़ा
पाया कि वह
दूरदर्शन के हिंदी समाचार के भ्रष्ट उच्चारण से
संकलित नमूने थे।

28 अप्रैल, 1985

हिंसा में मनोरंजन

अत्याचार के शिकार के लिए समाज के मन में जगह नहीं
तब जो बताते हैं
वह उसका दुःख नहीं
आपका मनोरंजन होता है।

1988

जेल में कविता

जेल में लिखी गयी है कविता
हर कविता जेल में लिखी गयी
जेल से निकलने की कोशिश ही कविता है
जितनी बड़ी जेल उतनी बड़ी कैदी की
आज़ादी की दुनिया
किंतु जेल छोड़ कर अपनी उस दुनिया में
आने की कोशिश यदि उतनी बड़ी नहीं
तो कविता नहीं होगी
जेल भी क्या है, यही अपनी दुनिया को
पाने की कोशिश में एकाकी हो जाना
मगर जिसे ऐसा अकेलापन जेल से निकलने
के बाद नहीं भाता है वही तो लिखता
है जेल से निकलने के बाद की कविताएँ ।

बड़ा अफसर

इस विषय पर विचार का कोई प्रश्न नहीं
निर्णय का प्रश्न नहीं
वक्तव्य—अभी नहीं
फिर से समीक्षा का प्रश्न नहीं
प्रश्न से भागता गया
उत्तर देते हुए इस तरह बड़ा अफसर ।

उसकी ऊब

जब मैं पूरी बात कह लेता हूँ तो
वह कहता है अँय...
जब वह कोई बात सुनता है तो ज़रा से अजब शब्द पर
हँसता है
हर वक्त उसे किसी तरह
एक ऊब से छूटने की बेचैनी है
सोच की ऊब फिक्र की ऊब ।

बिखरना

कुछ भी रचो सबके विरुद्ध होता है
इस दुनिया में जहाँ सब सहमत हैं
क्या होते हैं मित्र कौन होते हैं मित्र
जो यह ज़रा सी बात नहीं जानते
अकेले लोगों की टोली
देर तक टोली नहीं रहती
वह बिखर जाती है रक्षा की खोज में
रक्षा की खोज में पाता है हर एक
अपनी अपनी मोत ।

12 जून, 1974

पुरानी तस्वीर

अपने धुँधलके शून्य से जब उठाया सर
दिखी तब दीवार पर तस्वीर
तेईस बरस उसने काल में लटके हुए काटे
मुझमें बुढ़ापा दीखा
दुबारा गौर से ताका जहाँ यह खिंची थी वह जगह
याद आई सही लगभग,
मगर दिन कई ऐसे दिनों में उलझा पाया
अजब है वक्त का व्यवहार अपने प्रमाणों से
कि मैं जितना गुज़रता हूँ यहाँ कटते दिनों से
चित्र उससे अधिक ही कुछ बीत जाता है

काल का वह ब्याज है या दृष्टि का भ्रम है
कि ठहरी हुई स्मृतियाँ भी विगत में बीत जाती हैं
नहीं यह जड़ न होने का अनोखा आश्वासन है
पुनःप्रत्यय किसी बिसरे हुए क्षण का
जिसे पकड़ा गया था कभी अनजाने।

कौन था ?

दूर से दिखता है कि कोई एक आदमी
छड़ी के सहारे एक पाँव घसीट कर
मेरे पास आने की कोशिश कर रहा था
मैंने पहचाना नहीं
कौन है ? क्या मेरे साथ कभी पढ़ता था
या मेरे बचपन में मेरा पड़ोसी था
या कोई ख़बरों में छपी हुई घटना
या कोई सुनी हुई घटना का पात्र था
वह चलते चलते ठीक पास से गुजर गया
नहीं, मुझे देखा, मुस्काया मुझसे नहीं
वह कोई और था ।

ऐसा क्या था

आपकी बातचीत में ऐसा क्या था कि
जागते क्षण में मैं सूने यथार्थ में जा गिरा
यह कमरा मिट गया और अब
अस्पताल का एक कोना था
ताड़ के वृक्ष जहाँ ऊँचे खंभे के पड़ोस में
घास के मैदान से लगे दिखते थे
एक भरा पूरा नगर था एकांत में
मैं अब सुरक्षित हूँ बाकी जीवन में सुरक्षित
रहूँगा ।

1990

किताब पढ़कर रोना

रोया हूँ मैं भी किताब पढ़ करके
पर अब याद नहीं कि कौन सी
शायद वह कोई वृत्तांत था
पात्र जिसके अनेक
बनते थे चारों तरफ़ से मँडराते हुए आते थे
पढ़ता जाता और रोता जाता था मैं
क्षण भर में सहसा पहचाना

यह पढ़ता कुछ और हूँ
रोता कुछ और हूँ
दोनों जुड़ गए हैं पढ़ना किताब का
और रोना मेरे व्यक्ति का

लेकिन मैंने जो पढ़ा था
उसे नहीं रोया था
पढ़ने ने तो मुझमें रोने का बल दिया
दुःख मैंने पाया था बाहर किताब के जीवन से
पढ़ता जाता और रोता जाता था मैं
जो पढ़ता हूँ उस पर मैं नहीं रोता हूँ
बाहर किताब के जीवन से पाता हूँ
रोने का कारण मैं
पर किताब रोना संभव बनाती है

अक्तूबर, 1990

रोना

एक कहानी पढ़ी
जिसमें किसी के साथ
ऐसा कुछ घटित नहीं होता था
जिससे मैं रो पड़ूँ
सिर्फ लोगों के चरित्र थे
और चेहरे मोहरे
आगे चलकर शायद कुछ होता
मगर मैं रो पड़ा ।

अप्रैल, 1989

नहीं छापते

अपना लिखा हुआ बार बार पढ़ मुझे बल बहुत मिलता है
और यह अफ़सोस बिल्कुल नहीं होता कि लिखना बेकार था
मेरे लिखे को कभी कुछ लोग दुबारा छाप भी देते हैं
उद्धृत कर देते हैं उनमें से वे अंश जो आज के समाज में
सत्ता के शीर्ष के नज़दीक निरापत्ति दिखते हैं
किंतु उन निष्कर्षों को नहीं छापते जो मेरे तर्क से
निःसृत थे।

क्यों मरे

क्या था उनके पास
जिसके लिए मारे गए वे लोग
वे धीरे धीरे मरते मरते
एक बोझ और एक दुश्मन बन गए थे
उन्हें ज़िंदा रखना उन्हें हिस्सा देना होता।

जुलाई, 1972

कल

कल के भीतर एक और कल मिलता है
गया कल आनेवाला नहीं वह तो आकाश है
और है दरवाजों का एक सिलसिला ।

अप्रैल, 1989

निमंत्रण

सितंबर के महीने में कितनी आवाजें आती हैं
कहीं हारमोनियम की कहीं खिलखिलाहट कहीं कीर्तन
कहीं दूर बँटे गुँथे गाने
नगर एक उत्सव में डूबा हुआ है बिना विज्ञापन के
मगर मैं निमंत्रित नहीं हूँ, नहीं हूँ
मगर हूँ। जाने की इच्छा नहीं है, निमंत्रित नहीं हूँ
मगर हूँ जैसे कि होना चाहिए ।

1990

साथ के लोग

अकेलेपन का एक दिन आता है कि जब
अकेलापन बेकार हो जाता है
और फिर एक दिन आता है कि जब वह हाथ में
सबसे कीमती चीज़ होता है।

बहुत देर तक हम अकेले नहीं रह सकते मगर
यदि हम अकेले नहीं हैं किनके साथ हैं यह
तो हमें तुरंत जानना होता है

विरक्त लोगों के साथ हम घिरे रहते हैं शत्रुओं से
विरक्त लोग कौन हैं ?
उनकी घोषणाओं से हम नहीं पहचान पाएंगे
हम उनके चरित्र से ही पहचानेंगे और मैं किसी सैद्धांतिक
आश्वासनों से अधिक महत्त्व उनके आचरण को दूंगा। पर
यह भी मानूँगा कि आचरण सिद्धांत में विकास की सीढ़ी
हो सकती है दोनों में परस्पर विरोध का मिटना ही
आचरण का लक्ष्य होना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति
मानता है कि सब मनुष्य बराबर नहीं होते
परंतु उसका आचरण उसे बाध्य करता है कि सबको
बराबर माने तो वह इस सिद्धांत को मानेगा। अपने
कर्म से उन तक पहुँचेगा।

20 जून, 1988

चिड़िये के सामने

सबरे दिन निकल आने पर
मुझे अपने दरवाजे पर फुदकती
चहचहाने को मानो तैयार
पर अपने को मेरी उपस्थिति से रोकती चिड़िया दिखी
मैंने विचित्र लाल हरी चिड़िया,
घर के बनावटी बाग़ में नहीं पाली थी
कि उनका फुदकना रोज़ देखकर
अपने को प्रकृति के पास पुनरुज्जीवित करने का एक आदर्श
मैं विकृत आधुनिकता के सामने रख सकूँ

मेरे लिए
इन सच्ची चिड़ियों का फुदकना ही सार्थक है
चाहे वह गौरैया ही क्यों न हो
ये मेरे लिए उतना ही असली हैं जितना कि मैं हूँ।

30 अप्रैल, 1989

अकेला व्यक्ति

कितना अकेला है व्यक्ति वह
जो नहीं कहता 'जी हाँ' या 'जी नहीं'
अपने विश्वास को
मन में दुहराता है
और चुप रहता है
प्रश्न के उत्तर में
प्रश्न जो बहस में खींच लाने को
किया गया
बहस जो व्यूह रचने के लिए की गई
व्यूह जो बहस आधी छोड़ने
के लिए थी
साँस रोककर वह विश्वास को समेटकर
ऐसे चुप रहता है जैसे संपत्ति को कल
लुटा देने का व्रत लिया हो
कोई चुनौती नहीं उस पार से आती
जब वह नहीं कहता 'जी नहीं' 'जी हाँ'

क़ानून की नज़र में सब जन एक हैं
इसके जवाब में विषय बदल जाता है।

1989

मुझसे दूर वह

वह मुझसे दूर गया
क्योंकि वह अपनी पीड़ा
मुझे दिखाना नहीं चाहता था
उसमें स्वाभिमान था
वह न स्वयं रोता था
न पीड़ा को अकेले झेलना
वह सहानुभूति का विषय मानता था

उसे क्लेश में पड़े देखना
उसके प्रति सहानुभूति से आंदोलित होना एक बात है

उसे क्लेश में संघर्ष करते देखना
और यह पहचानना कि मेरी सहानुभूति में
इस संघर्ष की पहचान है दूसरी बात ।

ढब

मैं हर अन्याय पर ऐसे मुस्कुराता हूँ
जैसे मैं उसके विरुद्ध हूँ
किंतु मौन रहता है बोलते तुम हो
और तुम लौटते हो यह समझकर कि
मौन भी रहना एक किस्म का विरोध है
हम दोनों साथ हैं
अपने होटल में बैरे से मुस्कुराता हूँ
यह मेरे आभिजात्य की एक शैली है
अपना असमंजस छिपाने का एक ढब।

ख़तरा

एक चिटका हुआ पुल है
एक रिसता हुआ बाँध है
ज़मीन के नीचे नीचे बढ़ता हुआ पानी है
ख़तरे में राम ख़तरे में राजधानी है

पहले खुदा के यहाँ देर थी अंधेर न था
अब खुदा के यहाँ अंधेर है और उसमें देर नहीं।

जनवरी, 1972

दुख

कितना कठिन है उसी दिन
बड़े होते जाना
ऐसे ही कई कई साल यह जानते रहना कि
मैं क्या हो गया क्या हो गया है समाज
उफ़ क्या बहुत पीछे जाना पड़ेगा यह जान लेने को
अब मेरे मन में दुख हैं बहुत
पर मैं किसी को रुला नहीं सकता हूँ
केवल वही दुख जो मुझमें है
उसमें डाल भर सकता हूँ

आखिरकार

सूबे सूबे उपनिवेश हैं अलग अलग हैं सूबेदार
किंतु समूचा भारत अपनी अपमानित पीड़ा में एक
कलावंत गुणवंत जनों की जाति बताते हैं अख़बार
और नहीं करते हैं वे इस अवमूल्यन का अस्वीकार
लूट लूट कर हड़प रहे हैं मिट्टी जंगल और पहाड़
ख़त्म हो रहा देश, बचेगा क्या सिंहासन आखिरकार

जून, 1972

अभी कहूँगा नहीं

यहाँ के योजना विभाग को
मैं नहीं जानने दूँगा अपनी जान में
कि वह कहाँ-कहाँ किस-किस को तोड़ चुका है
कि वह और कितना किसे मार सकता है

साहित्य अकादमी मेरे वर्णन को
यथार्थवादी कह कर पुरस्कृत करे
यह मैं नहीं होने दूँगा

मेरी कथा के अंत में मुसाहब
जय जय करेंगे कि अब तो हुजूर ही
बचा सकते हैं भारत को
इसलिए मैं कहूँगा ही नहीं
जो मुझे कहना है।

एक भयंकर रहस्य लिए
मैं सभाघर में आया था
मुझे यहाँ बैठे रहने दो
एक अनजान आदमी की तरह
जिसे बर्दाश्त कर
तुम दिखा सकते हो कि तुम कितने उदारवादी हो

मार्च, 1972

मान्यता

रोना रोता रहता है पत्रकार
बीच बीच में किसी बात पर
गरजता है फिर रोने
लगता है
अगर इसी शिल्प में
थोड़ी भड़ैती और
थोड़ा तिरस्कार भी
जोड़ कर एक दो तरह की
हँसी भी कर ले
तो रोने गरजने को
मान्यता मिलती है
संभ्रांत वर्ग में।

1990

अनाज के इस्तेमाल

पैदा कम हो रहा है क्योंकि लोग
गुलाम हैं
केवल बात करनेवालों की नौकरियाँ
खेत खोदनेवालों की नौकरियों पर निर्भर हैं
अब उनकी तनख्वाहें निकल नहीं रही हैं
अनाज का इस्तेमाल तुम चाहते हो
खाने के लिए

तुम चाहते हो गाढ़े वक्त्र में सहारे के लिए
तुम चाहते हो दबा कर
उसी से दूसरों का धन खींचने के लिए

तुम चाहते हो दूसरों का धन
खींचने का साधन बनाए जाने के लिए
ताकि उस धन से
तुम्हारे राजनैतिक कार्यकर्ताओं की
तनख्वाहें दी जा सकें।

लेखक होना

कहानी किसी कल्पित संसार में समाज को
दुर्बल के पक्ष में करती है
लेखकगण
इसको समाज का परिवर्तन मानकर खुश हो जाते हैं
इससे जो ताक़त उस दुर्बल को मिलती है
वह भी उस कल्पित संसार में मिलती है
हाड़-मांस में नहीं
इस ताक़त से जो सुख दुःख प्रेम या विषाद
उसके प्रतिरूप के जीवन में घटता है
वह भी उसी कल्पित संसार में घटता है
साहित्य के सँकरे मोर्चे यहाँ बंद हो जाते हैं
और यह बात लेखकगण कभी जान नहीं पाते
इसीलिए लेखक हो जाने के साथ साथ
लेखक न रहना ज़रूरी है।
रचना के धर्म में कभी तो पवित्रता त्याग कर
लेखक काग़ज़ कलम की पूजा के बिना
लेखक बना रहे।

19 जनवरी, 1990

सेंसर

यह एक सेंसर है जिसको किसी ने
लगाया नहीं है क़ानूनन
क्योंकि क़ानून से लगता नहीं है यह या कोई भी सेंसर
लोग निडर बोलते रहते हैं सिर्फ़ देखते नहीं
जब उनकी बोली में कभी तर्क अनायास घुमड़ कर
एकजुट होता है
तर्क जो हज़ारों अनाथों के प्रतिदिन के जीवन में
शब्द बना अधबना रहता है
तब वे चुप हो जाते हैं।

सुबह

मुझे देर लगती है दिन में पैठते हुए
देह में पीड़ा रह जाती है, अधबीच में
फुर्ती से स्वप्न के काँटेदार तारों से
छूट कर कहाँ आ गया हूँ मन ही मन कहते
मैं उठकर बैठ जाता हूँ पर कहीं जाता नहीं
बड़ी देर तक ।

दर्शक

नाटक देखने जाकर दर्शकों को आते हुए
देखता हूँ तो लगता है कौन हैं ये लोग
ये कितने दूर हैं मुझसे
क्या नाटक से गुज़र कर
ये मेरे पास आ सकते हैं ?
शायद कुछ और दूर हो जाएँ ।

27 जून, 1989

दीक्षांत समारोह

दीक्षांत समारोह में कौन सा गाउन हो इस पर
एक विराट सांस्कृतिक बहस चल रही थी
अंततः एक भारतीय गाउन बना
सब लड़कों ने
जो धोती कुरता पहन कर नहीं आ सकते थे
बनवाया ।

—वह कुरता-पैंट था ।
एक दीक्षांत भाषण देने आया
उसने वेद वाक्य पढ़ने शुरू किए
लड़कों ने कहा
स्नातक की डिग्री नहीं काम दो ।

जनवरी, 1972

भाषा की मृत्यु

भाषा बेकार है
यही कहने के लिए यदि बची है भाषा
तो वह बेकार है
जो मर गया है उसे न पहचानने के कारण
मर गई है वह
मृत्यु दो मनुष्यों को जोड़ती है
एक-दूसरे के बराबर रखकर
मगर मृत्यु के आँकड़े
आड़ हैं
जिनमें निहित है
बहुत मरे—मैं उनमें नहीं था
मैं नहीं मरा
सब शोक प्रस्ताव हैं अपने बचे रहने की घोषणाएँ
कविता यही करती है घोषणा
मरे हुए शब्दों में जब शोक प्रस्ताव करती है
भाषा को शक्ति दो यह प्रार्थना करके
कवि माँगता है बचे रहने का वरदान।

1 जुलाई, 1972

भाषा का युद्ध

अब हम भाषा के लिए लड़ने के वक्त
ग्रह देख लें कि हम उससे कितनी दूर जा पड़े हैं
जिनके लिए हम लड़ते हैं
उनको हमको भाषा की लड़ाई पास नहीं लाई
क्या कोई इसलिए कि वह झूठी लड़ाई थी
नहीं बल्कि इसलिए कि हम उनके शत्रु थे
क्योंकि हम मालिक की भाषा भी
उतनी ही अच्छी तरह बोल लेते हैं
जितनी मालिक बोल लेता है

वही लड़ेगा अब भाषा का युद्ध
जो सिर्फ अपनी भाषा बोलेगा
मालिक की भाषा का एक शब्द भी नहीं
चाहे वह शास्त्रार्थ न करे जीतेगा
बल्कि शास्त्रार्थ वह नहीं करेगा
वह क्या करेगा अपने गुँगे गुस्से को वह
कैसे कहेगा ? तुमको शक है
गुस्सा करना ही
गुस्से की एक अभिव्यक्ति जानते हो तुम
वह और खोज रहा है, तुम जानते नहीं।

जनवरी, 1972

भाषा का भविष्य

भाषा के भविष्य पर भाषण करके उठे शिक्षा के
उपमंत्री

बूढ़ा खड़ा हुआ
कहा, मेरे पेट में बायगोला है साहब दवा करवा दो।

हिन्दी

पुरस्कारों के नाम हिंदी में हैं
हथियारों के अंग्रेज़ी में
युद्ध की भाषा अंग्रेज़ी है
विजय की हिन्दी।

अँग्रेजी

अँग्रेजों ने अँग्रेजी पढ़ाकर प्रजा बनाई
अँग्रेजी पढ़ाकर अब हम राजा बना रहे हैं।

फरवरी, 1972

डर

बढ़िया अँग्रेजी वह आदमी बोलने लगा
जो अभी तक मेरी बोली बोल रहा था
मैं डर गया।

11 सितंबर, 1988

मंत्री के घर में

इतने बड़े बड़े कमरे थे जिनमें सौ सौ लोग समायें
बार बार जूते खड़काते वर्दीधारी आवैं जायें
घर के भीतर बैठे गृहमंत्री जी दूध मिठाई खायें
बाहर बैठे हुए सबेरे से मिलनेवाले जमुहायें
मुंशी आया आगे आगे पीछे मंत्री दर्शन दीन्ह
किया किसी को अनदेखा तो लिया किसी को तुरतै चीन्ह।

प्रश्न

आमने-सामने बैठे थे
रामदास मनुष्य और मानवेन्द्र मंत्री
रामदास बोले आप लोगों को मार क्यों रहे हैं ?
मानवेन्द्र भौंचक सुनते रहे
थोड़ी देर बाद रामदास को लगा
कि मंत्री कुछ समझ नहीं पा रहे हैं
और उसने निडर होकर कहा
आप जनता की जान नहीं ले सकते
सहसा बहुत से सिपाही वहाँ आ गए।

ईर्ष्या

कितने लोगों ने मुझे बधाई दी
उन्हें ईर्ष्या थी उन्होंने मेरे साधारण कर्म को भी
ऐसा बताया
जैसे कोई बड़ी बात हो जो उनके जीवन में नहीं हुई
और होती तो वह उससे भी साधारण
होने पर बड़ी बात है

ये वे लोग हैं जो बूढ़े हो गए पर बड़े नहीं हुए
और इन्हें ईर्ष्या है उससे
जो बड़ा हो गया पर बूढ़ा नहीं हुआ

1989

हिन्दुस्तानी अमीर

किस तरह की सरकार बना रहे हैं
यह तो पूछना ही चाहिए
किस तरह का समाज बना रहे हैं
यह भी पूछना चाहिए

हमारे घरों की लड़कियों को देखिए
हर समय स्त्री बनने के लिए तैयार
सजी बनी

हिन्दुस्तानी अमीर की भूख
कितनी घिनौनी होती है
बड़े बड़े जूड़े काले चश्मे
पाँव पर पाँव चढ़ाए
हवाई अड्डे पर एक लूट की समृद्धि की गंध रहती है
चिकने गोल गोल मुँह
अँग्रेजी बोलने की कोशिश करते हुए

हर किस्म का भारतीय अमीर होकर
एक किस्म का चेहरा बन जाता है
और अगर विलायत में रहा हो तो
उसका स्वास्थ्य इतना सुधर जाता है
कि वह दूसरे भारतीयों से

भिन्न दिखाई देने लगता है
उनमें कुछ ही थैंक्यू अँग्रेजी ढंग से कह पाते हैं
बाकी अपनी अपनी बोली के लहजे लपेट कर छोड़ देते हैं।

जनवरी, 1975

तरक्की के दशक

बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के दशक हैं तरक्की के
हर दशक में मेरे मित्र बदलते रहे
कुछ तो पहचाने नहीं जाते हैं
वैसे देखो तो विशेष परिवर्तन नहीं हुआ
सिर्फ ज़रीदार किनारे की धोती और भागलपुरी सिल्क
पाँव में बिना घिसी चप्पल
हाथ में घड़ी, भला इसमें क्या नया है ?

यही तो प्रश्न है
कि भारतीयता की यह धजा है
या भारत में एक नए वर्ग की वर्दी

यह दिल बहलाव है
हर दस बरस बाद लोगों को देखना
ओंठों के आँखों के आत्मविश्वास के परदों में झाँकना
कि देश की आज़ादी में कितना हिस्सा उन्हें मिला
दूसरों को गुलाम करने के वास्ते।

अकेला

लाला दादू दयाल दलेला थे
जेब में उनकी जितने धेला थे
उनके लिए सब माटी के ढेला थे
जिंदगी में वे बिल्कुल अकेला थे

1961

आदेश

शहर भर के गधे बंद कर दिए गए
ताकि गधों का जुलूस न निकाला जा सके।

6 जनवरी, 1983

उम्र

50 में वह ठाकुरों को खोजते थे—

मैं भी ठाकुर हूँ

70 में वह खोजते हैं उन्नाव के रहनेवालों को

—मैं भी बैसवाड़ी हूँ

100 की उनकी जिंदगी हो न सकी

जबकि वे कहते मैं भी हिन्दुस्तानी हूँ।

वर्ग परिवर्तन

क्रांतिकारी नेता की ऊँचे वर्गों में लोकप्रियता कम

हो गई

कारण कई थे

एक ऊँचे वर्ग कुछ वर्षों से और सुरक्षित हो गए थे

दूसरे क्रांतिकारी भी उसी वर्ग में पहुँच गया था।

जाने की जगहें

उसने कहा : मैं कहीं जा रहा हूँ
क्या दफ़्तर ?
—नहीं, घर और दफ़्तर के बीच बहुत सी जगहें हैं
हा हा हा
मैंने हँस कर कहा कि मैं जानता हूँ
गाँव से आए बुद्धिजीवी को
शहर का वैभव और अश्लीलता आकर्षित करती है।

आत्मरक्षा

जिसने अपराध किया
उसे छोड़ देना
आज खुद को बचाना है।

हँसी जहाँ ख़त्म होती है

जब किसी समाज में बार बार कहकहे लगते हों
तो ध्यान से सुनना कि उनकी हँसी कहाँ ख़त्म होती है
उनकी हँसी के आखिरी अंश में सारा रहस्य है

1988

समान अवसर

मैंने सबको
समान अवसर दिया
पर उसके पहले
मैंने एक पूरी पीढ़ी को बाँट दिया
—जो सीख सके
और जो न सीख सके।

जनवरी, 1972

महापुरुष

लोगों को वक्त काम देता है
जो कर देते हैं
उन्हें बाकी लोग कह देते हैं महापुरुष ।

मई, 1972

संस्थान

गाँधीवादी संस्थानों को
अब पैसा नहीं मिलेगा सरकार से
इसलिए वे सरकारी परियोजनाओं में
गाँधीवाद की खोज कर रहे हैं
ताकि उन्हें किसी योजना के अधीन
पैसा मिल सके ।

फरवरी, 1972

उद्योग

उद्योग ने क्या किया
जनता के वास्ते
आज़ादी का साहस
लोग बाग भूल गए
नागरिक थे अनुचर बन गए।

12 दिसंबर, 1984

दृश्य-1

अपने घर के पिछवाड़े की
थोड़ी सी जगह में
चुपचाप बैठे हुए बूढ़े को देखो
वह जीवन जी चुका।

20 जून, 1988

दृश्य-2

हर समय मुस्कुराता चेहरा
यदि किसी दिन
वह हठात् मर गया तो लोग कहेंगे
अभी अभी तो मैंने उसे देखा था ।

दृश्य-3

बंदूकें मकानों की तरफ मकानों में लोग
सड़क पर एक एंबुलेंस एक लाश गाड़ी
और एक पुलिस वैन ।

दृश्य-4

घोड़ा बिना सवार के
गली में दौड़ता जाता है
मुड़कर देखता है मुझे ।

अंतर

सामने से
कभी मृदु कभी कठोर दिखते हैं चेहरे
पीछे से देखो तो उनमें
पीड़ा, तनाव और चिंताएँ दिखती हैं।

निंदा

तुम निंदा के जितने वाक्य निंदा में कहते हो
वे निंदा नहीं रह गए हैं और केवल तुम्हारी
घबराहट बताते हैं।

बस में अभिमन्यु

दिल्ली की एक भरी बस में उस नौजवान ने तपाक से कहा :
आप इस बच्चे को गोद में बिठा लें
ताकि ये बुजुर्गवार बैठ जाएँ
दस बरस का बच्चा मेरा नहीं था मगर मना मैंने नहीं किया
क्योंकि किसी बच्चे को गोद में बिठाने में भला क्या हर्ज है
अनसुनी कर दी अच्छा नहीं लगा नौजवान द्वारा एक बच्चे का
तिरस्कार

ज़रा देर बाद वह चिढ़ गया
आसपास फिर बड़ी उम्र के तमाम लोग
बेचैन हो उठे कि बच्चे का कुछ करो
सीट बड़े के लिए खाली कर दो
आवाज़ें आई कि बच्चे को उठा दो जी
मुझसे कहा गया था यह बिना कहे
तब मैंने देखा कि घिर गया है बच्चा
मैंने पुकार कर पूछा कि किसका है ?
आगे की सीट से एक औरत बोली
'मेरा है', 'क्यों उठा दें इसे,' मैं बोला :
'उसका भी टिकट है वह बैठ कर जाएगा
—और यह मेरे साथ नहीं है !'

भीड़ ने तब माँ को पकड़ा कि भैन जी

क्यों नहीं आप इसे उठाकर अपने पास कर लेतीं
माँ बोली, देखिए, मैं पहले ही एक
इतने बड़े बच्चे को गोद में बिठाए हूँ
नौजवान ने बड़े बूढ़ों सी बात की
तो बड़े बच्चे को नीचे उतार दें
छोटे को उतार लें
पीछे की सीट मगर छोड़ दें

मुझको उम्मीद थी कि तर्क से आज भी
बहुत लोग बात मान लेते हैं
मैं बोला वह उसकी सीट है
टिकट लिया गया है
नौजवान गरजा आधा टिकट लिया
सीट कहाँ हो गई
'होगा आधा टिकट मगर सीट
एक व्यक्ति की है वह पूरी ही मिलती है
आधे टिकट का यही अर्थ होता है
'कि सीट तो पूरी है पर आधे दाम में'

आजकल तर्क में जब हार जाते हैं शक्तिवान
कुढ़ करके बहस भंभट कर देते हैं
सच को उलझा देने के लिए
आप इस बच्चे की माँ हैं
बोलिए टिकट लिया है इसका
कंडक्टर ! आधे टिकट पर एक फुल सीट मिलती है
कंडक्टर भीड़ को देखकर मुन्न से बोला—'नेह'
'आप सुन लीजिए' मुझसे सबने कहा
सरकारी आदमी कह रहा है नहीं
आप सही हैं या सरकारी आदमी
मैं बोला सही तो मैं ही हूँ

आप कुछ भी कहें
आप एक बच्चे को कष्ट में डालने पर तुले बैठे हैं
नैतिकता का सवाल आया तो
बहस घिसटने लगी
तब औरत ने खड़े होकर लड़ाई की
मैं इतनी परेशान मुश्किल में बैठी हूँ
आप इस बच्चे को उठाएँ मत
ये कैसे लोग हैं हैरान करते हैं
मुझे नहीं देखते कितनी तकलीफ़ में बैठी हूँ
चिंचियाई भीड़ तो बार बार बोलो मत ।

यह कथा यहाँ ख़त्म हो जाती
मगर एक औरत ने आकर मुझसे कहा
आप ज़रा खिसक जाएँ, मैं उठने ही लगा
नहीं नहीं, बोली वह आप भी बैठिए
और मैं भी बैठूँगी
हम तीनों ने जगह बाँट ली
एक साथ ठँस गए
पर खिड़की से सर को हाथ को
जितना संभव था बाहर निकालकर

बच्चा बैठा रहा
बड़े लोगों के इस संसार से अलग ।

नई पीढ़ी

एक नौजवान और उससे छोटी एक छांकरी
हर रोज़ मिलते हैं
चकर चकर बोलती रहती है लड़की
पुलिया पर बैठे लड़के को छेड़ती

वह सोच में पड़ा बैठा रह जाता है
दोनों में एक भी तत्काल कुछ नहीं माँगता
न तो वफ़ादारी का वायदा, न बड़ी नौकरी समाज से
वे एक क्षण के आवेग में सिमट रहते हैं

यह नई पीढ़ी है
भावुकता से परे व्यावहारिकता से अनुशासित
इस नई पीढ़ी को ऐसे ही स्वाधीन छोड़ दें।

26 मार्च, 1985

मेरे अनुभव

कितने अनुभवों की स्मृतियाँ
ये किशोर मुँह जोहते हैं सुनने को
पर मैं याद कर पाता हूँ तो बताते हुए डरता हूँ
कि कहीं उन्हें पथ से भटका न दूँ

मुझे वताना चाहिए वह सब
जो मैंने जीवन में देखा समझा
परन्तु बहुत होशियारी के साथ
मैं उन्हें अपने जैसा बनने से बचाना चाहता हूँ।

महाभारत

उन तमाम पुत्रों की आयु से
पिताओं की शक्ति वृद्धि होती थी
जब यह इतिहास ने दिखाया था
कि यौवन को उन सबने अपने
पिताओं को दे दिया

आज जब पिताओं को नौजवान बेटों
की लाशें भी सिर्फ समाचारों में
मिलती हैं समय आ गया है
वे जीवन का कुछ अंश
बेटों का जीवन बचाने में होम दें।

1989

संतान

एक असंभव इच्छा है
मैं अपनी संतान से अधिक उम्र तक जी लूँ
पर यह क्या कोई प्रतिस्पर्धा है
या मेरा वात्सल्य ।

1989

चिंता

तुम्हारे भाग्य में यह सुख लिखा है
कि तुम किसी संतान का क्षय नहीं देखोगे
जीते जी तुम्हारे कोई मरेगा नहीं
पर मेरे बाद ? तो उससे तुम्हें क्या दुःख
उसकी चिंता ही क्यों ? कहता है ज्योतिषी ।

8 सितंबर, 1985

बेटे से

टूट रहा है यह घर जो तेरे वास्ते बनाया था
जहाँ कहीं हो आ जाओ। ... नहीं यह मत लिखो
लिखो जहाँ हो वहीं अपने को टूटने से बचाओ
हम एक दिन इस घर से दूर दुनिया के कोने में कहीं
बाहें फैला कर मिल जाएँगे।

मेरा लड़का

एक तस्वीर बार-बार उभर आती है
मेरा लड़का मुझे हाँफते हुए कुछ देने आया है
यह आप भूल गए थे
मुझे अब और ज़्यादा जीने को नहीं मिलने वाला है
पर मेरे लड़के को उससे भी कम वक्त है।

9 जनवरी, 1989

दृश्य

अपने बच्चे को हृदय से लगाया मैंने
इस तरह की सारी तस्वीरें झूठी पड़ गईं।

गृहपति

घर के बाहर भेज देता है बच्चों को गृहपति
लौट कर आने की बेला तक
बाहर के आक्रमण से उनके जूझने की चिंता करता हुआ
इंतज़ार करता है
वे जब सो जाते हैं
उनके फिर उठने के लिए कर रखता है इंतज़ाम।

1988

मुस्कान

वे औरतें जिन्हें युवावस्था में देखा था
बरसों अपने दाम्पत्य के बिता चुकीं
अब उन्हें किसी बात पर मुस्कुराते हुए देख कर
मेरी पहचानी हुई उस मुस्कान में
कितनी गहराई दिखती है।

1989

औरत की पीठ

औरत की पीठ उसका इतिहास है
उस पर जुल्म का असर वहाँ देखो
अपने सीने को अगर उसने छिपा रखा हो।

स्त्री का भय

थोड़ी सी ईर्ष्या थोड़ी सी खुशामद
थोड़ी सी घृणा थोड़ी सी मित्रता
थोड़ा सा भय और थोड़ी सी बेशर्मी
थोड़ी सी दिल्लगी थोड़ी सी इज्जत

ओह, कितनी तरह की मुस्कानें हमने बनाई थीं
इन्हीं से जानते थे हम कि किसका ओहदा
उस दिन कितना सुरक्षित है

एक दिन लोप हो गई सब मुस्कानें
उनकी जगह आ गया एक दृढ़ निश्चय
हर किसी को आना था राष्ट्रपति के सम्मुख
और वह अपने सिपाहियों से ही मुस्काते थे

एक दिन सिपाहियों की भी मुस्कानें लोप हो गईं
उनके चेहरे पर एक दृढ़ निश्चय आ गया

तब कलाकार सब निकले मुस्कानों की खोज में
एक औरत के चेहरे पर एक मिल गई
वह गौद में बच्चा लिए गाहक माँग रही थी

कलाकारों ने उसे खूब बड़ा किया, रँगा
और सब कपड़ों के विज्ञापन बना दिए

उनमें सब रंग थे अमूर्त, अमेरिकी आधुनिक
किंतु जब मैंने उन्हें मेले में जाती
एक खानदान की औरतों पर देखा
तो वे सब जानबूझ कर उन्हें
अपमानित करने के लिए बने दिखे
कपड़े कपड़े कपड़े जहाँ गाँव से भागे आते थे
पुरुष अन्न की खोज में, वहाँ
कपड़े ही कवच हैं शहर के लोगों के

पर जब मुरझाये लोग भीड़ में खड़े हों
कोई रंग अपनी अलग कथा नहीं कह पाता
सब मिलकर थोपी गई लज्जा की कहते हैं कहानी

एक औरत लो
और उसके कपड़े तले उसका तन छुओ
उस पर झुर्रियाँ हैं

एक पुरुष लो
उसको छुओ
वह चिकना है
पुरुष राजा है
स्त्री दासी
अहा ! अहा !
टेलिविजन
उस पर औरत आकर बताती है कि वह औरत को अपने
और महँगे दाम हासिल करने में कैसे मदद देती है
और दूसरी औरतें देख कर खुश होती हैं

मेरी छोटी बच्ची यह देखकर बहुत हँसी
असल में वह नाराज़ थी : पर वह डर के मारे हँसी

उसने अपन तन पर नगानशान दख
जो बड़े होने पर टेलिविजन खोजेगा
पुरुष ही हमेशा राज करता है
मर्दों का राज हो तो दलाल पुरुष
औरतों का राज हो तो गुंडा पुरुष
उठाओ मेरी बच्ची अपने शरीर के साथ साथ अपना सिर
लंबी लड़ाई है और सैनिकों में हैं जो सब पुरुष हैं
दो हजार साल में जिन्हें लूटकर
जीना सिखलाया गया था
वे उन्हें बाँट लेंगे
गरीब सैनिकों में अमीर अफसरों में

पिता हर हालत में मारा जा चुका होगा
सिर्फ तुम्हीं लड़ोगी या शायद एक होगा प्रेमी भी

यह मैंने भय में लिखा
पर मुझे भय ने ही मुक्त किया
क्योंकि उसे औरतों के चेहरे पर देखा है
सबसे कमनीय रमणी के शरीर में
छुआ है सब समय सैनिक पुरुष का भय।

चैती

चैती गा रही है
उच्चारण शुद्ध है
गमक लीन हो गई है सधी लय में
माँग में सिंदूर है
हाथ से सम पर ताल देती है संगतकारी को बताती है
पर उछाह को बाँधे रहती है
भले घर की बहू का कठोर अनुशासन ।

रहस्य

उसको मैंने बहुत पहले कभी देखा था
तब भी रहस्यमयी थी वह
वह सुन्दर थी जाने क्यों
कई दिनों बाद फिर देखा तो सुन्दर है
पर वैसी नहीं जाने क्यों

अब उसके जाने पहचाने
सौंदर्य का बदल गया रूप है
और अब रहस्य है कि जाने क्यों ?

अक्टूबर, 1990

फर्क

अठारह बरस की लड़की से यह कहना कि
तुम बेवकूफ हो
उसको रिझाना है
पर अड़तीस साल की औरत से यही कहना
उसे दुत्कारना है—
पर तुम यही कहते रहे हो !
स्त्री की उम्र इस तरह
इज्जत से शुरू करके अपमान की ओर बढ़ने
को बाध्य है।

पढ़ते-पढ़ते

हम देख नहीं सकते उसकी पीड़ा
पर वह चुपचाप लिए उम्मीदें दिल में
पढ़ती जाती है हँसना खाना भूले
जब कभी बदलती है वह थक कर आसन
तब अनजाने पिंडलियाँ दीख जाती हैं :
वह पढ़ते-पढ़ते बड़ी हो रही है क्या ?

आजकल बसों में

आजकल बसों में बूढ़े दिखते हैं ज़्यादा
लड़कियाँ जिनकी उम्र शादी की हो गई
पर शादी नहीं हुई बाँह में हाथ डाले जाती हैं
दुःखी और थकी हुई।

देह में कितनी बार कितने उफान आते हैं
बचपन की याद फिर सपनों की और फिर जी सकने की
एक बार अपनी जवानी
पर इससे छिपते और भागते हैं लोग
क्योंकि अब उन्हें अपना बचपन सुंदर नहीं लगता
आज के ऐश्वर्य की तुलना में।

भ्रम निवारण

तुम क्या समझते हो कि
हर लड़की जो मुझे देखकर
मुस्कुराती है मेरी पहचानी है
नहीं, वह तो सिर्फ
अपनी दुनिया में मस्त रहती है।

लड़कियाँ

बैंक के पटरे के पीछे लड़कियाँ
आती हैं धीरे धीरे धीरे
जैसे किसी नाटक का दृश्य हो
उनके चेहरे देखो
शादी की उम्र गई
कुछ कड़े नाक नक्श और कुछ शालीन रूप
वह लड़की जो अभी बोदी दिख रही थी
सुंदर लगने लगी
थोड़ी देर एक चमक
एक थरथराहट सी उसके मुँह पर रही
और फिर चली गई
वह एक लम्बे संघर्ष में लगी हुई
चालीस लड़कियों में से एक है।

परिवार

दूर से मैं जान लेता हूँ कि वे सब खा रहे हैं,
—साथ बैठ कर

इसमें जो समय लग रहा है
वह मैं कुछ और करने में लगा रहा हूँ—सब कुछ ठीक है।

20 जून, 1988

घर के लोग

कान में दोष है सुन नहीं पड़ता है
घर के सब लोग बोलते हैं कुछ
तो भुनभुनाहट सुनाई देती है

घर के सब लोग सफल होकर आते हैं
पर जब उसे बताओ
तो कितनी हल्की लगती है वह सफलता।

रजिया आपा

आप कहाँ हैं रजिया आपा
आज मैंने आपको सपने में देखा
कुछ देर पहले मैं ऊल जलूल कुछ देख रहा था शायद
शायद किसी युवती का नए प्रेमी से परिचय
शायद मेरी एक नई नई नौकरी पुलिस की

तब आप आई और बोलीं
कि अभी अभी लौटी हूँ वतन से
मैं आपके गाँव का नाम जाने कब से हूँ जानता
अब भूल गया कुछ न पूछ पाया वहाँ का हाल
फिर बोलीं कुछ जिसका मतलब था यह जिंदगी बेकार गई

...

‘आपने कुछ नहीं खोया है’ (यह कहते हुए मैं
जाग्रत जीवन का शिष्टाचार करता था,
मुझे मालूम थीं आपा के जीवन की वंचनाएँ)
मैं तो यह कहते हुए वास्तव में उनसे
वही वाक्य, वही शब्द लहजा सुनने को ललचाया था
जिसमें वह बोलती थीं
मुझमें न जाने क्या बदलती थी—
मुझे बड़ा करती थी।

माँ

मैं अपनी माँ की भावना करता हूँ तो मुझे वह
नाचती हुई नहीं
बाग़ में बेलें छाँटने की मजूरी करती हुई दिखती है।

स्पर्श

रोज़ मैं दिन भर थक कर
बस पड़ रहता था
आज मैंने बिस्तर पर गिर कर कहा
स्पर्श ज़रूरी है।

रात को जागकर

रात को जागकर मैंने अपना घर देखा
सारी रात बैठा मैं देखता रहा :
यह घर एक जीती जागती कहानी है।

मुझे इतनी अच्छी तरह कभी न दिखी थी दिन में
वह सो रही थी :
कई बरस रोग से जूझने की कुल दास्तान
उसके चेहरे पर थी
रोज़ रोज़ जितना वह बता पाती है
वह कितना अधूरा होता है

वह सोते हुए उठा और थरथराता हुआ चलने लगा
जाकर कुर्सी पर बैठ रहा सोता रहा
धीरे धीरे ठंड बढ़ी रात रानी की महक घर भर में
भर गई
सब चीजें जहाँ जहाँ जड़ पड़ी थीं वहीं लगातार
पड़ी रहीं : सुस्ताती हुई
रोशनी मुझे नहीं चाहिए थी एक कोने के सिवा
वहीं पर वह मैंने रखी
तमाम घर में दिन के सस्ते उजालेपन से वह
कितना गहरा उजाला था।

जनवरी, 1972

मेरी स्त्री

प्यारे दर्शको, यह जो स्त्री आप देखते हैं सो मेरी स्त्री है
इसकी मुझ से प्रीति है। पर यह भी मेरे लिए एक विडम्बना है
क्योंकि मुझे इसकी प्रीति इतनी प्यारी नहीं
जितनी यह मानती है कि है। यह सुंदर है पर मनोहारी नहीं,
मधुर है, पर मतवाली नहीं, फुर्तीली है, पर चपला नहीं
और बुद्धिमती है पर चंचला नहीं। देखो यही मेरी स्त्री है
और इसी के संग मेरा इतना जीवन बीता है। और
इसी के कारण अभी तक मैं इतना सुखी था।
सच पूछिए तो कोई बहुत सुखी नहीं था। पर दुखिया
राजा ने देखा कि मैं सुखी हूँ सो उसने मन में ठानी
कि मेरे सुख का कारण न रहे तो मैं भी सुखी न रहूँ।
उसका आदेश है कि मैं इसकी हत्या कर इसको मिटा
डालूँ। यह निर्दोष है और अनजान भी। यह
नहीं जानती कि इसका जीवन अब और अधिक
नहीं। देखो कितने उत्साह से यह मेरी ओर आती है।

उसका मन

उसका मन नहीं लगता
क्योंकि उसे पूरी सूचना नहीं मिलती
मैं उसकी क्या मदद करूँ
वह मुझ पर प्यार के लिए निर्भर है
और उसके प्यार में एक अटक आती है
हर बार वह किसी बात को अधूरी जानती है
उसका तनाव मैं कम नहीं कर सकता
क्योंकि मुझे भी पूरी ख़बर नहीं है
और जब मैं पलट कर उसे देखता हूँ
खुद खोजो
तो वह अपने प्यार को घोंट देती है
जितनी ताक़त से वह मुझ पर गुस्सा कर पाती है
और उसकी ताक़त भी हर बार कम होती
जाती है
अब या तो वह एक दिन पूछना बंद कर देगी
या जब पूछने पर फटकारी जाएगी तो
एक दिन एकाएक किसी दिन
लम्बी साँस लेकर
मुँह फेर लेगी चुपचाप।

संगिनी

हर कुछ बरस बाद
उसकी आँखों में एक दयनीय आतुर भाव
फिर से अपना खोया हुआ रस पाने की इच्छा सा जागता है
पर कुछ दिन बाद कुम्भला जाता है
वह कितना बर्दाश्त करती है
उसे रोना भी नहीं आता
वह काँपती नहीं है तन जाती है
दाँत भींचे वह तीर की तरह निकल जाती है
मगर गुस्से से नहीं
वह अकेली है
वह मेरी संगिनी
मेरा अकेलापन न जानते हुए भी अकेली है
वह किसी तरह हँसना चाहती है
जब कि मैंने पिछली बार उसे हँसते हुए देखा था
तो डर गया था
वह हँसी उसकी जड़ होती हुई ज़िंदगी को फोड़कर
एकाएक फूटी थी
और उसमें एक नयापन आ गया था
जो मैंने कभी सोचा नहीं था
लेकिन पहले जब वह हँसती थी
तो कोई शब्द नहीं होता था
केवल हँसी रोकने का एक शब्द
और होंठों का कस जाना
अंत में हल्का सा एक आत्म स्वीकार।

स्वीकार

जब वह किसी बात को स्वीकार करती है
तो 'हाँ' नहीं कहती
सिर्फ खुशी खुशी अपना काम करने लगती है
उसी से हम जानते हैं कि
उसने स्वीकार किया।

1973

उपन्यास लिखना

तुम्हारे जीते जी ही मैं लिख सकता उपन्यास तो लिखता
क्योंकि ब्योरे मुझे याद नहीं रहते हैं
और तुम कुछ भी लिखती नहीं
सिर्फ याद रखती हो।

1988

परिवर्तन

पहले वह मुस्कुराकर हँसी दबाकर हँसती थी
अब ज़ोरों से हँसती है
इतने वर्षों में वह थक गई औरत है
बच्चों की तरह घबराती है
हम अपनी कम अक्ल से ही कहते हैं 'बच्चों की तरह'
इतने बरस में सह सकने की ताक़त का विखरना उसे घबराता है
यह बच्चों का सा नहीं बड़ों का सा है।

उसका रहना

रोज़ सबेरे उठ कर पाते हो उसको तुम घर में
इससे यह मत मान लो वह हरदम मौजूद रहेगी।

4 अप्रैल, 1988

मेरा साथ

वह बैठी धूप में काढ़ रही थी कुछ कपड़े पर
वह अब अकेलेपन की एक दुनिया में मुझ से अलग
जिए जाने की कोशिश कर रही है
उसके पिता गए माँ भी गुज़र गईं
चालीस की उम्र में वह छोटे से बच्चे सी हो गई थी अनाथ
कितने बरस हुए
तब मैं उसे उसकी उम्र से बीस साल कम करके
किया था दुकेला
पर कितनी देर तक वह मुझ से हो सका
उम्र ने उसे और आगे जा कर पछाड़ा जब
तब उसे कितने अकेलेपन ज्ञात हो चुके थे
वह एक दुनिया थी जो मैं बनाता था अपने एकांत में
और इस आशा से कि
एक बड़ी जिंदगी बहुतों के वास्ते
हासिल कर रहा हूँ

हाँ, कई लोग साथ देने को राजी थे
थोड़ी ही देर बाद रास्ते अलग तो नहीं हुए
मगर यह प्रकट हुआ वह ज़मीन और है जिस पर
खड़ा है उन लोगों में से हर एक
और मैं सिर्फ उस औरत के साथ हूँ
जो इस दुनिया में है अकेली

जैसे मेरा अपनी अधबनी दुनिया में
उसके साथ रहना एक सुविधा थी
आज वह देख रही है मेरा एकाकी होना
उसके लिए कोई सुविधा नहीं।

नहीं रोकूँगा

वह जिस बात में आशा देखती है
मैं एक पिटे हुए सर से सोचता हूँ कि
उसमें नहीं है वह
पर उसे आशा देखने का अधिकार है :
उसे सुख की कल्पना करने का अधिकार है
वह धोखा खाएगी
यह मेरी बुद्धि कहती है
पर उसे आशा करने से मैं नहीं रोकूँगा
उसके लिए यह सुख
हो सकता है बहुत से दुःख का कारण बने
पर उससे मैं यह सुख इसलिए नहीं छीन सकता
कि छीन लेने पर सुख की एक संभावना छीन लेता हूँ।—
नहीं छीनता तो दुःख की एक आशंका रहती है :
मैं मान लेता हूँ कि वह आशा अधिक बड़ी चीज़ है
वह आशंका उतनी बड़ी नहीं है—
क्योंकि बड़े होने का अनुभव उसकी आशा में है।

20 जून, 1988

काल से परे

आज तुम चालीस के हो
कल पचास के भी हो जाओगे
लेकिन दस बरस कहाँ से तुम्हारे शरीर में आएँगे
यह देखने को मैं दम साधे बैठा हूँ
हर मिनट कुछ न कुछ तुम में बदलता है
मेरी हर धड़कन के साथ
मुझे यह पीढ़ी बेगानी होती सी लगती है
जो मेरी पीढ़ी है।

वक्त की हमारे साथियों में पहचान
काल से परे अपने किले की पहचान बन गई है
हम वहीं से लिखते हैं कविता
वहीं से विदेश में मित्रों को
आधुनिक त्रासदी की अपनी वेदना भरी चिट्ठी।

एक दिन आता है

एक दिन आता है कि देह स्वीकार नहीं करती है
पेट भर खाना भी
और तन भूखा भी नहीं रह सकता है
तब शरीर के रिश्ते ठंड से धूप से
उठने बैठने से बदलने ही पड़ते हैं
तब सारी दुनिया से रिश्ते सुधारने पड़ते हैं
जबकि हम
दुनिया को सुधार नहीं सके
तब सिर्फ एक नया समझौता आज से काफ़ी नहीं होता है
वे तमाम संघर्ष जो मैंने नहीं किए
अपना हिसाब माँगने चले आते हैं।

यह क्या है ?

एक दिन वही हुआ जो होना था
दोनों ने अपना अपना रास्ता पहचाना तो था ही
अब अलग कर लिया
यह थी बुढ़ापे की शुरुआत

एक अकेलापन यह आ कर बतला जाता है
बाक़ी दुनिया से मैं अलग हूँ

यह क्या है एक दिन सबेरे की यह थकान
हर दिन की थकान सी यह नहीं लगती
वे सब परचियाँ जो सँभाल कर रखी थीं
बहुत सारी अलग अलग परचियाँ हैं अब
वह क्षण चला गया जब इन्हें जोड़ कर
मैंने भी जीवन वृत्तान्त लिख लिया होता

अब एकदम नयी यात्रा बेसहारा यात्रा होती है
स्मृतियाँ हैं अंतहीन श्रृंखला स्मृतियों की
हम केवल तारतम्य के लिए जीते हैं
मृत्यु के सामने होने से सब यथार्थ एक में जुड़ता है

कितने सपने दूसरे दिन भी याद रह गए
वे इमारतें, ख़ाली घर
उनमें कोई आदमी आता जाता था नहीं ।

वृद्ध

एक बार लोग क्षमा कर देते
तो मरता चैन से
कहता है थका वृद्ध
किंतु अभय मिलते ही
मरने की चाह छोड़ देता है
लोग नए सिरे से क्षमा के विषय पर
विचारने लगते हैं।

हिसाब

आयु क्षय होती बढ़ती रहती है
हम इतिहास के साथ क्या करते हैं इस आधार पर।

30 अप्रैल, 1989

मुश्किल समय

दस बरस और जियूँ
और अपने सामने उन्हें मरता देखूँ
इस उम्मीद में कि एकाकी वे नहीं होंगे दुर्दिन में
हम एक मुश्किल समय में जीते हैं
जिसमें जीते जी बच निकलना बहुत संभव है
काट ले जाते हैं लँगराते हुए क़ैद कठिन
और समझते हैं कि इतिहास जीत आए हैं

वह यही व्यक्ति है, प्रतिमान वही हैं इसके
सिर्फ़ जो आदमी था इसकी कसौटी वह नहीं
इसके दुखते हुए घावों से दर्द ग़ायब है
सिर्फ़ कुछ पट्टियाँ हैं फाहे हैं मरहम है।

26 जनवरी, 1990

उम्र

यह तो मालूम था कि लोग मुझे जैसा समझते हैं
वैसा मैं हूँ नहीं मगर मुझे कभी कभी अपनी उस शक्ल
को ध्यान में रखना मुफीद है
और कुछ नहीं तो शायद इसीलिए कि शायद मैं सुधर जाऊँ
मगर इस उम्र में जब शरीर से अनेक समझौते कर लिए
और हमउम्रों से सुन लिया कि जाने दो बूढ़ा है, नौजवान
यह कहते हुए आते हैं हम तो उम्र का लिहाज करते हैं
आप ज़रा शांति से बोलिए तो मुझे क्या करना चाहिए।

जीवन का सिलसिला

कुछ धुनें इस उम्र में सुनकर
उस दिन के अनुभव की याद हो आती है
जब वह धुन सुनी थी, सीखी थी, यों ही
तब से अब तक के दिन धुँधले पड़ गए

जाने कितने सीत्कार, इस बीच
मर्म से उपजे और देह में बिला गए...
जीवन का सिलसिला, जी लेने के पीछे बनता है।

मिलना

समय बीतता है मिलने के अंतराल बढ़ते जाते हैं
युग लम्बा बीता है कुछ भी किए बिना
दिन बार-बार फिर वही कुरै देता है ऊबी हुई ताज़गी

अर्थ आयु का है कि प्रतीक्षा
ठीक समय की करते हैं हम
और समय में हस्तक्षेप नहीं करते मरने के डर से
ऐसा लम्बा जीवन ही क्या मृत्यु नहीं है
और जो खड़ी लगती है वह नहीं है मृत्यु

बिना वजह हम पहुँचे घर पर
कोई जल्दी नहीं देर तक बैठें
दोनों थकने से पहले उठ लें

जीवन में अमरत्व जैसा कुछ
प्राप्त करने के लिए अधिक से अधिक
यही कर सकते हैं कि इसे
और लम्बा करें
जो कुछ देखा था
उसे फिर देखें।

जीवन

यह संसार बार बार मर जाता है मेरे लिए
और मैं ज़िंदा रहता हूँ
फिर जब यह ज़िंदा होता है
मैं 'कुछ और ज़िंदा होता हूँ
बार बार इसमें जीवन ख़त्म हो जाता है।

बुढ़ापे की ओर

सबसे बड़े दोस्त हैं वे जो अधेड़ हैं
देखो वे सब अपनी अपनी देह में बूढ़े होने लगे हैं
और उनकी नाक अपने खून के रिश्ते सूँघने लगी है
जिन्हें वह जवानी में सूँघ नहीं पाती थी
सोचो सब अधेड़ अपनी अपनी जाति के गुट बन जाएँ
तो कितने नेता हुए जिनको
जल्द ही मरना पड़ेगा अपना स्मारक बनवाने
के लिए
क्योंकि वही उनके लिए देश की सबसे बड़ी इमारत
होगी

यह एक दर्द भरी सच्चाई है कि जैसे जैसे मैं
बूढ़ा हो रहा हूँ मेरी खाल उसी तरह से सिकुड़ती
जा रही है जैसे मेरी जाति के लोगों में सिकुड़ती है
मैं झुर्रियाँ पहचानता हूँ सब अग्रवालों की
और अब वे नौजवानों में भी दिखने लगी हैं
जिससे मैं उन्हें भी पहचानने लगा हूँ
जिन्हें पहले सिर्फ नौजवान जानता था।

1972

उम्र

मैं बूढ़ा होता हूँ
पता नहीं चलता है
एक दिन मेरी एक संतान
उम्र की ढलान पर
जब जरा तेज़ी से बिखरती है
मुझे अपनी उम्र दिखती है

1989

बुढ़ापा

जिन्हें हम जानते हैं
उन्हें बहुत दिन बाद देखकर
एकाएक पाते हैं
कि वे बूढ़े हो गए।

1988

आराम से मरता

यदि पैदा होते ही
मुझे पता चल जाता बीस बरस बाद
मुझे अपने समवयस्कों में वह सब पतन
किस प्रकार दिख जाएँगे
जो उनके पुरखों ने उनके संस्कार में डाले हैं
यदि मैं जन्मा होता वृद्ध
और किसी तरह यौवन को
इस सर्वज्ञान के सहारे निभा जाता

यदि आज इतना कम समय बच रहा है
पर कम समय की
मुझको चिंता होती
तो मैं आराम से मरता
अगर मरा हुआ पैदा होता

दूर के शहर से

रात के अँधेरे में जबकि सब यथार्थों को
छानकर उनका खुज्झड़ एक ढेर बन जाता है
दूर के शहर से फ़ोन यह आएगा कि मैं अब बहुत बीमार हूँ
आवाज़ आत्म सम्मान से यह नहीं कहेगी कि कुछ दिनों का मेहमान हूँ

मगर मुझे उसको बचाने के वास्ते नहीं
स्वयं टूटने फूटने से बचने के लिए
बचपन के मित्र को देखने जाना है
टेलिफ़ोन ने ख़बर दी : तीन सौ मील और दो दूरियाँ
सैकड़ों सालों की

जो कुछ अलग कुछ सम्मिलित हम दोनों जी चुके
अब दोनों मरते हैं पाँच दस बरस के अंतर से
कोई संदेश इसे कम नहीं कर सकता ।

1989

मृत्यु

पड़ी हुई लाश को देखकर डर क्यों लगता है ?
इसका कारण क्या हम कभी सोचते हैं ?
एक नाटक का एक पात्र कहता है : मरे हुए आदमी से क्या डरना ?
उसके लिए ज़िंदा आदमी ख़तरनाक चीज़ हो सकता है, आदमी
के मरते ही उससे ख़तरा दूर हो जाता है। पर यह बात कि
हम अब भी डर रहे हैं ब़ाकी रह जाती है यह बताने को
जो आदमी बचे रह गए हैं उनसे हमें ख़तरा है। वास्तव में
हमें ख़तरा उनसे नहीं है पर उनसे भी नहीं था जो मर गया है—
मृत्यु का परिणाम जीवन से इतना बड़ा अंतर दिखाता है कि
हम भयभीत हो जाते हैं।

2 अप्रैल, 1983

शोकसभा

शोकसभा में क्या है
जिससे हम एक दूसरे से
आँख नहीं मिलाते
आँख चुराते हैं

आपकी मृत्यु में मैं भी आ गया हूँ

‘आप मुझसे मिलने आए थे’
मैंने सिर्फ उनके पाँव छुए

अब तुम लिखोगे
‘इनकी शोकसभा में
इतनी भीड़ न थी।’
तुमने लिखा साठ के होने पर
किसी तरह का ढोल नहीं बजा

जब मेरा भाषण खत्म हो रहा था
तो श्रोता उसे वहीं पर समाप्त होते सुनना चाह रहे थे
जहाँ वे समझने से इन्कार कर देते हैं।

1990

सोमदत्त

शोकसभा के लिए निकलने में देर हो गई थी
अपने अहाते से निकलती कारों में एक से पूछा
क्या आप भी शोकसभा जाते हैं ?
उन्हें अचकचाया हुआ छोड़कर मैं आगे बढ़ा और सवारी पकड़ी

उससे कहा जल्दी रवीन्द्र भवन ! कहाँ है यह तो समझ गया पर उसे
कोई जल्दी न थी

मैं बतलाने लगा मुझे क्यों जल्दी है
इसके पहले कि सोमदत्त का नाम लेता, मैं रुक गया ।
वहीं मैं अकेला था । और यह अच्छा था
क्योंकि अगर वहाँ भी वही लोग मिलते तो वही कारें मिलतीं
जिन्हें शोक की कोई ख़बर न थी ।

अधूरे काम

दो बातें मरने पर कहते हैं
वह अमर रहे और उसे बहुत कुछ करना था
किसी को भी लो और मार दो और यह पाओगे
कि उसे बहुत काम करना था
पर कौन जानता है कि वह उन्हें क्यों नहीं कर रहा था
काम जो हम चाहते हैं करें पर स्थगित करते रहते हैं
बर्बर लोगों की तरह कर नहीं डालते
ऐसे अधूरे काम
जिनकी याद मरने के बाद आती है
कौन जानता है क्यों अच्छी तरह सोचे भी नहीं गए।

1980

अमरता

जब एक आदमी
मर जाता है
तब उसके मरने पर
जितनी देर विश्वास होता नहीं
उतनी देर वह अमर रहता है
कहते हैं : वह जीवन से निराश हो चुका था
पर उसके जीवन से अभी बहुत लोगों को आशा थी
फिर थोड़े दिन बीते नहीं कि वही लोग उसे
भूलने लगते हैं
क्योंकि अपने जीवन से निराश नहीं हो चुके हैं वे।

1978

अभी जीना है

मुझे अभी जीना है कविता के लिए नहीं
कुछ करने के लिए कि मेरी संतान मौत कुत्ते की न मरे
मैं आत्महत्या के पक्ष में नहीं हूँ तो इसलिए
कि मुझसे पहले मरें वे जो कि
मेरी तरह मरने को बाध्य हैं
कुछ नहीं करता हूँ मृत्यु के भय से मैं
सिर्फ अपमान से उनको बचाता हूँ
जिन्हें मृत्यु आकर ले जाएगी
दबे पाँव आहट को सुनता हूँ
और उसे शोर बनने नहीं देता हूँ
हाँ मैं कुछ करता हूँ जिसका
उपचार से कोई संबंध नहीं।

1990

कॉपी

यही एक देह मुझे लेकर नहीं जाना है
बाक़ी रह जाएगी यही देहांत तक
यही कटी पिटी पंक्तियों भरी कॉपी

मई, 1990

रहस्य

क्या रखा है बक्स में यह रहस्य है
उसी तरह यह भी रहस्य है कि मरने का दिन कब है ?

हम दोनों (बट्टूजी के लिए)*

हम दोनों अभी त चलते फिरते हैं
लोगबाग आते हैं हमारे पास
हम भी मिलते जुलते रहते हैं
एक हौल बैठ गया है मगर मन में
कि यह सब बेकार है
हम में से किसी को न जाने कब
जाना पड़ जा सकता है
हम दोनों अकेले रह जाने को
तैयार नहीं

1990

* पत्नी श्रीमती विमलेश्वरी सहाय

अभी लिखी नहीं गई

एक दिन जल्दी ही हम दोनों में
कोई एक चला जाएगा
मैं गया अगर तो बहुत कागज़ छोड़ जाऊँगा
तुम अगर गई तो कुछ नहीं छोड़ जाओगी

तुम एक ज़िंदगी आधी अधूरी हो
जो लिखी नहीं गई
जो अभी जी नहीं गई
जिसकी अभी बातें हुई नहीं
हम दोनों के बीच ।

1988

चुपचाप

मुझे दुनिया के फट जाने की
फ़िक्र नहीं
मुझे डर है हम दोनों में से एक
अकेला हो जाएगा
चुपचाप
शायद मृत्यु ने हम दोनों को ताड़ रखा है
दोनों में कोई एक
दुनिया को अकेले
झेलने को अभिशप्त है

1990

मैं खुद जाना चाहूँगा

सच तो यह है कि कोई कह नहीं सकता है
हम दोनों में से कौन पहले विदा लेगा
हाँ चाहने को मैं खुद जाना चाहूँगा
बाक़ी काम तुम पर या किसी पर छोड़कर।

दृश्य

तुम यहीं रह जाओगी
मैं चलता चला जाऊँगा
भीख माँगते हुए दया की
जिस तिस को इशारतन कहता मुझे देखे ।

1989

बट्टू को देखकर

मैं चाहता हूँ कि मेरे मरने पर तुम रोओ नहीं
यह जान लो कि हम लोग साथ साथ रह चुके और अब जाता हूँ
जीवन भर जिसे जी सकी हो
तो मर जाने का तुम दुख न करो ।

मेरी चीख

मृत्यु के भय से
मैं करता रहता हूँ
निर्दलीय चीत्कार
दल बिखरते दिलों के नेता
विरोधी पाखंड कोलाहल
मेरी चीख बन कर रह जाता है निरा काव्य ।

जीवन के अंतिम दिन

जो यहाँ से जाता है
बिना कुछ कहे जाता है
रोज़ मिलते हैं जो वे भी चले जाते हैं

आखिरी वक्त कुछ बगैर कहे
तुम चली जाओगी
या मैं चला जाऊँगा
और कुछ बातें पड़ी रह जाएँगी
कहने के लिए।

मैं तुम्हें अपना जीवन नहीं दे सकता
जो बचा है जीवन मैं रखता हूँ
तुम्हें जिला रखने के लिए
जबकि सब कुछ देकर तुम्हें बचा रखना चाहूँगा
वह अंतिम लेख, उपसंहार हम कब लिखेंगे
जब जीवन यह प्रसंग दर्ज करने में चूक जाएगा।

जीवन की निष्फलता उसके निष्कर्ष में नहीं है
वह उसे खर्च करने के सिलसिले में ही है
साठ वर्ष स्मृतियों से भरे
सब मिलकर एक बड़ा पत्थर हो गए हैं

सच्चे कलाकार जान जाते हैं कि उनका अब अंत आ गया है
जीवन के पांच वर्ष अंत में अकेला रहूँगा मैं
इसका अभ्यास नहीं कर सकता
क्योंकि वे अंत में ही होंगे
इसके पहले नहीं
ये सब सामान मैं लिए लिए फिरा
अंत में एक घर बनवाया उसमें उन्हें धरा
और भी अंत में छाँटने लग गया
इनमें से काम का एक कागज़
जीवन के अंतिम दिन
यही करते हुए
इस कोठरी की रद्दी उसमें रखते हुए चल बसा ।
यह नहीं कह सकता अब
कल दिन निकलने पर दिन शुरू होगा ।

अभी कुछ दिन और ज़िंदा रहूँगा
अधूरे लेखों को पूरा नहीं कर पाया तो
घर में जमा कागज़ों को छाँटना है
और बहुत से काम के बर्तन हटाने हैं
जो कभी सहसा किसी की मेज़बानी के वास्ते रखे थे
आखिर ये अधलिखी डायरियाँ लिए
कहाँ कहाँ तक जाऊँगा

मेरे पिता नहीं रहे
और अनेक पुरखों के बाद
मैं बच रहा
अब वह सागर आ रहा है
जहाँ कई बेड़े उतराते-डूबते पानी पर ठहरे हैं
मैं अपनी मृत्यु के बारे में सोचता सोचता
दिन भर की थकान में डूब, सो जाता हूँ

दीवार पर तस्वीर ! कब खींची गई थी
कैमरा था बहुत मामूली
वही घर था जहाँ की तमाम खुशियाँ
अगर मैं याद कर पाऊँ तो नहीं बता पाऊँगा तारीखें
कुछ दूसरी यादों से बिना अलग किए
कहीं ये वही जगहें तो नहीं हैं
भले ही वे दिन न हों जो कि जगहों को
समय के दायरे में ले आए हों
शायद किसी ढब से
दीवार पर तस्वीर !
वह कुछ धुल गई है

मैं मर चुका हूँ

तब मैं मर चुका हूँ
जब तुम मर रही हो
देखो दृश्य तुम बड़ी हो गई हो
हड्डियाँ शरीर में अर्थ रखती हैं अब
मुझे वह गोल गोल चेहरा और
गुदगुदे हाथ छोटे छोटे
भले याद हों
तुम मर रही हो शरीर के भीतर के रोग से
जो नहीं जानता
क्योंकि अब नहीं हूँ मैं—
मर चुके होने की उम्र पार कर के
जिस वक्त दर्द उठता है
तुम दोनों हाथ मन में उठाकर
मुझे याद करती हो
क्या तुरंत यह विचार छोड़ देने के लिए।

1990

चेहरे की सिकुड़ने

(कवि की अंतिम कविता)

थकी हुई औरत के चेहरे की सिकुड़ने
किसी एक परिवार की लंबी मुश्किलों की
आड़ी सतरें हैं
उनकी लिखावट कुछ अलग दूसरों से है
क्योंकि परिवार के पुरुषों ने अलग-अलग
भाषाएँ लिख दी हैं।

25 दिसंबर, 1990